अध्याय-2

भाषा एवं साहित्य

2.0 उद्देश्य

यह अध्याय भारतीय भाषाओं और साहित्य से संबंधित है। हम यह जानते हैं कि भारत एक बहुभाषी देश है और यही तत्त्व इसकी सांस्कृतिक बहुलता का आधार है।
इस अध्याय से हमें निम्न जानकारी प्राप्त होगी-

- कालिदास की साहित्यिक प्रतिभा की पहचान
- गााथाप्तशती का प्राकृत साहित्य के विकास में भूमिका
- अमीर खुसरों का नये साहित्यिक और संगीत रूपों में योगदान
- मिर्जा गालिब के योगदान के संदर्भ में उर्दू भाषा और साहित्य के उद्‌भव का इतिहास, और
- भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं और साहित्य का उद्‌भव एवं इसका विभिन्न स्तरों पर विकास

2.1 संस्कृत काव्य - कालिदास की ऋतुसंहार

2.1.1 भूमिका

कालिदास हमारे देश के साहित्यिक प्रतिभा के धनी एक महान नाटककार हैं। उनके नाटक और कविताएँ अतुलनीय हैं जिनमें वर्णन इस प्रकार का है कि दृश्य पाठक के आँखों के सामने प्रकट हो उठता है। वह एक दरबारी कवि थे तथा चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (357-413 ईस्वी) के दरबार में नवरत्नों में से एक थे। उनकी रचनाएँ जैसे मेघदूत, ऋतुसंहार (काव्य रूप), रघुवंश, कुमारसंभव (महाकाव्य) शकुंतला, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोउवर्शी, अभिज्ञानशकंतु लम (नाटक), उवर्शी आदि उल्लेखनीय हैं जो अत्यंत उत्कृष्ट हैं तथा जिन्हें आसानी से नहीं भुलाया जा सकता। उनका जन्म स्थान संभवत: मालवा के आसपास था और उनकी रचनाओं में उज्जैन का भव्य वर्णन दर्शाता है कि वह इस शहर के रहने वाले थे।

एक परंपरा के अनुसार, कालिदास अशिक्षित थे और अपनी गुणवती पत्नी द्वारा फटकारे जाने पर उन्होंने काली देवी का आह्वान किया जिनकी कृपा से अचानक ही उनमें अतिविशिष्ट काव्य प्रतिभा और हाज़िर-जवाबी के गुण उत्पन्न हुए। कालीदास शब्द का अर्थ है काली देवी का दास।

कालिदास काली देवी और भगवान शिव के उपासक थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया। उनके द्वारा हिमालय क्षेत्र का विस्तृत वर्णन इसका समर्थन करता है। वे वेदों, उपनिषद् के दर्शन, पुराण, चिकित्सा, ज्योतिष और खगोल शास्त्र के ज्ञाता थे। अंग्रेज़ इतिहासकार विंसेंट स्मिथ के अनुसार कालिदास का साहित्यिक कार्यकाल लंबी अवधि का है जो 30 वर्षों से कम का नहीं आंका जा सकता।

जहाँ तक कालिदास के लेखन की बात है प्रकृति की उनकी हर रचनाओं में अहम भूमिका है। यहाँ तक कि ऋतुसंहार, जिसका हम यहाँ अध्ययन कर रहे हैं, में प्रकृति की सुंदरता का अतिविशिष्ट प्रस्तुतीकरण किया गया है जिसके द्वारा मानवीय भावनाओं को प्रकृतिक सुंदरता के साथ समन्वित कर प्रकट किया गया है। उत्तेजक दृश्यों का इस रचना में अनके स्थानों पर वर्णन है और कवि ने बड़ी सफलता से मानवीय भावनाओं को प्रकृति से जोड़ कर अभिव्यक्त किया है।

2.1.2 ऋतुसंहार

ऋतुसंहार कालिदास की अन्य रचनाओं से काफी छोटी है। इसमें 144 विभिन्न छंदों के पद हैं। इसके द्वारा कवि ने भारतीय वर्ष की छः ऋतुओं द्वारा पशुचारकों के प्रेम का वर्णन किया है। भारत की छः ऋतुओं को अंग्रेज़ी ग्रिगोरियन महीनों के अनुसार समझने हेतु नीचे एक तालिका दी गई है।

क्र.सं.	ऋतु	सीज़न (Season)	हिंदू महीना	ग्रिगोरियन महीना
1.	ग्रीष्म	समर	ज्येष्ठ से आषाढ़	मई–जुलाई
2.	वर्षा	रेनी	श्रावण से भद्रपद	जुलाई–सितंबर
3.	शरद	ऑटम	आशाविरि से कार्तिक	सितंबर–नवंबर
4.	हेमंत	प्री–विंटर	मृगशीर से पौष	नवंबर–जनवरी
5.	शिशिर	विंटर	माघ से फाल्गुन	जनवरी–मार्च
6.	वसंत	स्प्रिंग	चैत्र से वैशाख	मार्च–मई

ऋतुसंहार (ऋतुओं का वर्णन) – जो कालिदास की एक रचना है – को एक तरुण रचना कहा जाना चाहिए क्योंकि इसकी विशेषता प्रकृति का बढ़ा–चढ़ा कर और अत्यधिक उल्लासपूर्ण वर्णन है। ऋतुसंहार में जहाँ ऋतु का अर्थ अंग्रेज़ी शब्द सीज़न से है और संहार का अर्थ किसी को मारना है पर यहाँ इसका अर्थ ऋतुओं की माला से है जो ईश्वर के गले में है तथा जिसे वर्ष कहा जाता है। यह ऋतुओं के संहार की रचना नहीं है जैसा कि शब्द 'संहारम' से प्रतीत होता है बल्कि यहाँ छः ऋतुएँ प्रकृति के स्वामी शिव–पार्वती के लिए 'प्रकृति सीजन' के तत्त्व हैं। शिव पाँच मुखाकृति वाले भगवान हैं जिनके पाँच मुख सृष्टि की रचना के पाँच मूलभूत तत्त्वों के प्रतीक हैं। इस रचना की मुख्य धारा केवल एक ही है – ऋतुओं की प्रशंसा। पर फिर भी इस रचना की अपनी एक काव्यात्मक विशिष्टता है। यह कृति उपमाओं के लिए भी प्रसिद्ध है जिसे 'उपमा कालिदास्य' कहा गया है। इसमें उपमा के कई पहलू या रंग विद्यमान हैं जैसे रुपक, उपमा, तर्काभास, व्यक्तिपरक रुपक आदि।

इस संक्षिप्त महाकाव्य में छः अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय एक ऋतु की व्याख्या करता है जिसकी शुरुआत ग्रीष्म (समर, Summer) ऋतु से होती है। इसमें ग्रीष्म ऋतु का पुरुषों, स्त्रियों और पशुओं तथा प्रकृति रूप जैसे लताएँ, फूल, नदियाँ और वनों पर होने वाले प्रभावों का सुबोध वणर्न किया गया है। कालिदास ग्रीष्म ऋतु के वर्णन की शुरूआत इसे असहनीय गर्मी और अतिक्रमण के रूप में करते हैं। गर्मी के प्रभावों की व्याख्या करते हुए कालिदास कहते हैं कि स्त्रियाँ भारी वस्त्रों की अपेक्षा हल्के वस्त्रों को प्राथमिकता देती हैं। लोग संगीत की ओर उन्मुख होते हैं। पथिक इस ऋतु में हवाओं के कारण उड़ते धूल के बादलों से अपना रास्ता नहीं देख पाता। इस प्रकार के चित्रांकन के अतिरिक्त, हम इस अध्याय में देखते हैं कि इस ऋतु में हिरण पानी की तलाश में दौड़ते रहते हैं और नीली आकाश की परत से बार–बार छले जाते हैं। इसी प्रकार, साँप छाया की तलाश में मोर के पंखों की ओर बढ़ते हैं। वन में अग्नि चारों ओर तबाही फैला देती है जिसमें बहती पवन मित्र रूप में अग्नि की और अधिक सहायता करती है।

शुष्क मौसक और भीषण गर्मी भूमि को जलहीन कर देती है और पानी की तलाश में भटकते हाथी शेर से भी भयभीत नहीं होते। यहाँ तक कि हाथी, सांड और शेर, वनाग्नि के कारण, एक स्थान पर मित्रों की भांति इकट्ठे हो जाते हैं। वे अपनी वैमनस्यता त्याग देते हैं तथा जलती घास के कारण एक दूसरे के समक्ष प्रकट होते रहते हैं। वे ऐसी नदी के किनारों पर आराम करते हैं जिसका विस्तृत रेतीला

किनारा होता है। सब को वर्षा की बूंदों की चाह रहती है जो धरती की सतह को गीला कर सके। कालिदास लिखते हैं, "इतनी भीषण गर्मी के बावजूद लोग आम तथा शीतल चाँदनी रात का आनंद उठाते हैं। कुछ स्थानों पर अद्‌भुत घर जहाँ पानी के फव्वारे हैं, विभिन्न प्रकार के आभूषण और रसीले चंदन लेप, रमणीय घर, सुगंधों से महकती छत, मय में प्रेमिका की सांसों से बनती लहर, एक कसे वाद्य यंत्र पर संगीत, उत्तेजना की अग्नि, प्रेमी इनका गर्मी की रातों में लुत्फ उठाते हैं तथा प्रमिकाएँ अपने प्रेमियों द्वारा अनुभव की जाने वाली गर्मी को कम करने का प्रयास करती हैं। वे अपने शरीर पर रेशम वस्त्र डालकर, कमरबंद पहनकर, अपने स्तनों द्वारा जो मालाओं से ढके हैं, अन्य आभूषणों तथा चंदन-लेप और अपने खुशबुदार बालों से जिसमें स्नान के वक्त कांतिवर्धक वस्तु का प्रयोग किया गया है, द्वारा अपने प्रेमियों की गर्मी निवारण करती हैं।"

सभी ऋतुओं में वर्षा ऋतु की अपनी ही सुंदरता है जो व्यक्ति की सभी पाँचों इन्द्रियों को एक ही समय में संतुष्ट करती है। अत: कालिदास इस ऋतु से अत्यंत प्रेम करते हैं।

उनकी दूसरी रचना मेघदूत का भी विषयवस्तु लगभग वही है जो ऋतुसंहार का है परंतु मेघदूत अधिक विस्तृत और उत्कृष्ट है। इस प्रकार, नदी इस कविता में एक स्त्री रूप में प्रस्तुत होती है, चातक और बालाहक पक्षी प्रस्तुत होते हैं, अभिसारिका बिजली की चमक में अग्रसर होती है, कदंब खिलने लगता है, केतकी भी प्रस्तुत होती है। पर इन सभी उपमाओं के बावजूद मेघदूत की उत्कृष्टता की कमी खलती है। वर्षा ऋतु पर एक पद में कालिदास लिखते हैं, "अपने मन में बिजली की चमक और बादलों की भीषण गड़गड़ाहट से डर कर स्त्रियाँ निद्रावस्था में अपने प्रेमियों को इसके बावजूद की उन्होंने उनसे बुरा व्यवहार किया है आलिंगन कर लेती हैं।"

शरद ऋतु वर्षा के बाद की ऋतु है। यह एक नवविवाहिता की भांति सुन्दर है और लोग इस ऋतु में हर्ष और उल्लास से त्यौहार मनाने का इंतज़ार करते हैं। कालिदास लिखते हैं, "धरती 'केस' पुष्पों से श्वेत हो उठती है, रात चाँदनी से सफेद हो उठती है, नदी का पानी हंसों की उपस्थिति से, झील कमलों के कारण, वन क्षेत्र 'सप्तछड़' वृक्षों के फूलों से लदे होने के कारण झुक जाने से और भूमि 'मालती' से आच्छादित होने से सफेद हो उठती है। ओ प्रेमी! शरद परिणाम को और चमकदार बना देती है।" वे शरद के सौन्दर्य का और अधिक वर्णन करते हुए एक अन्य पद में कहते हैं, "आकाश, जिससे बादलों का आवरण हट गया है, जो चाँद और सितारों से आच्छादित है, इस ऋतु में झीलों की सुंदरता प्रतिबिंबित होती है, जिसमें खिले कमल हैं जहाँ शाही हंस बैठे हुए हैं और जल जो अपने 'माकर्त' रत्नों द्वारा झील की सुंदरता में वृद्धि करता है"।

यद्यपि शरद एक सुहावनी ऋतु है पर इसका तीसरा पहर गर्म हो उठता है इसलिए यह एक प्रकार से दूसरी ग्रीष्म ऋतु है। फिर भी कालिदास कहते हैं मौसम बदलता है और हवा में तीक्ष्ण ठंड महसूस की जा सकती है। हेमंत (प्री-विंटर सीज़न) ऋतु में हवा में ठंड और अधिक बढ़ जाती है। यह मुख्य रूप से प्रात:काल और अंतत: रात में महसूस की जाती है। कालिदास के शब्दों में, "हेमंत ऋतु का आगमन होता है जो रमणीय है। इसमें फसलें बढ़ती हैं और नई कपोलें अंकुरित होती हैं जिसके अंतर्गत 'लोधरा' वृक्ष में फूल आते हैं, अनाज पकने लगते हैं, कमल नष्ट होने लगते हैं और बर्फ गिरने लगती है।" वह आगे लिखते हैं, "इस ऋतु में स्त्रियों के गोलाकार सुंदर वक्ष, अब मनोहर मोती की माला जो चंदन-लेप के कारण सफेद है और बर्फ, 'कुंड' फूल और चंद्रमा जैसी प्रतीत होती है, से अलंकृत नहीं है।"

शिशिर ऋतु पाले वाली ठंड का तीव्रतम रूप है। तापमान वास्तव में गिर जाता है और लोगों को अनेक परतों वाले वस्त्रों में देखा जा सकता है। पर यह ठंड इतनी तीव्र नहीं होती जितनी पश्चिमी देशों में होती है। केवल पहाड़ी क्षेत्रों में ही बर्फबारी होती है। इस ऋतु में धरती चावल की तैयार फसल और गन्ने से आच्छादित हो उठती है जिसे क्रौंच पक्षियों की चिल्लाहट, जो पास ही के क्षेत्रों में रहते हैं और जिनमें प्रेम के उत्साह की प्रबलता है, और सज्जित कर देती है। साथ ही लोग अपने घरों के भीतर बंद खिड़कियों, आग, सूरज की रोशनी, गर्म वस्त्र और नौयुवतियों के साथ रहना पसंद करते हैं। लोग अब ऐसी रातों का आनंद नहीं लेते जो ओस के गिरने और चांदनी से ठंडी हो गई है तथा असंख्य तारों से सजी हुई है। कालिदास लिखते हैं, "ईश्वर करें कि यह ऋतु आपको प्रसन्नता प्रदान करे जिसमें मीठी वस्तुओं की बहुलता होती है जो मीठे चावल और गन्ने के कारण मनोहारी है, जिसमें कामुक क्रियाओं में वृद्धि होती है तथा कामदेव और अधिक प्रबल हो जाते हैं और जो ऐसे लोगों के लिए दिल टूटने का कारण है जो अपने प्रेमियों या प्रेमिकाओं से अलग हैं।"

अगली ऋतु वसंत ऋतु है। यह नये जीवन की ऋतु है जिसमें चारों ओर फूल खिल उठते हैं, मनमोहक आम पक जाते हैं और मधुमक्खियों का संगीत सुनाई पड़ने लगता है। वसंत ऋतु फसल कटाई के त्यौहार के लिए भी प्रसिद्ध है जो भारत के विभिन्न भागों में मनाया जाता है। इस ऋतु में सुगंधित हवा बहती है।, सांयकाल लुभावना होता है और दिन आनंदमयी होते हैं। स्त्रियों के सज्जित चेहरों पर, जो स्वर्ण कमल की भाँति हैं, पर पसीने की बूँदे सुंदरता से फैल जाती हैं और मणियों के बीच मोती की उपस्थिति का अहसास कराती हैं।

कालिदास आगे लिखते हैं, "आज कामदेव विभिन्न रूपों में विराजमान हैं - कम्पित रूप में स्त्रियों के नेत्रों में जो सुरा के कारण शिथिल हैं, पीले गालों में, उनके वक्षों की कठोरता में, उनकी कमर की गहराई में और उनके गोल होठों में।" एक अन्य पद में वह कोयल और मधुमक्खी के व्यवहार को बड़ी सुबोधता से बताते हैं। वे कहते हैं, "नर कोयल, पके आम के रस से नशे में होकर अपनी मादा-कोयल को भावपूर्ण रूप से चुंबन देता है। वहीं कमल के फूल में गुनगुनाती मधुमक्खी भी अपने प्रियवर को लुभाने के लिए इस प्रकार के कार्य करती है।"

कालिदास का प्रकृति प्रेम निम्नलिखित पद से भी परिलक्षित होता है। "कमसिन 'अतिमुक्त' लताओं के प्रेम फल का रस मदहोश मधुमक्खियों ने चूस लिया है। इनकी सौम्य कपोलें शांत हवा में झूम रही हैं। सौम्य कपोलों का इस प्रकार झूमना, ध्यान से देखे जाने पर, प्रेमियों को तीव्र रूप से उत्तेजित कर देता है। वे इस ऋतु में पथिक की मानसिक अवस्था का इस प्रकार वर्णन करते हैं, "पके आमों को देखकर, पथिक, जिसकी मानसिक स्थिति अपनी पत्नी से दूर रहने के कारण व्यथित है, अपनी आँखें बंद कर लेता है, रोता है, संताप करता है, अपनी नाक को अपने हाथों से बंद कर लेता है और जोर-जोर से विलाप करता है।"

2.1.3 उपसंहार

इस प्रकार यह सुंदर संक्षिप्त कविता अपनी कमियों के बावजूद अपनी महानता के प्रति आश्वस्त करती है। यह कविता कवि की संवेदनशीलता को भी प्रकट करती है जो जीवन और सौंदर्य को मानव बाह्य संसार में पशु और प्रकृति में समानांतर रूप में खोजता है। इस कविता की वर्णनात्मक रमणीयता को कुछ पंक्तियों में नहीं व्यक्त किया जा सकता। ऋतुसंहार एक आनंदमय कविता है जिसका मुख्य कारण

कालिदास का मानव प्रेम और प्रकृति का प्रतिभावान कवि होना है। प्रोफेसर मैकडॉनल (Prof. MacDonell) ने ऋतुसंहार की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वे कहते हैं, "शायद ही कालिदास की कोई अन्य कृति कवि की प्रकृति के प्रति सहानुभूति को, उनकी आंकलन शक्ति, को, और भारतीय जीवन को विविध रंगों में प्रस्तुत करने के सामर्थ्य को इतनी स्पष्टता से प्रकट करती हो।" एम०आर० काले (M.R. Kale) के अनुसार ऋतुसंहार में ऐसा कुछ नहीं है जिससे इसकी तुलना कालिदास की अन्य रचनाओं 'रघुवंश' या 'कुमारसंभव' के पदों से की जा सके और इस प्रकार लोग प्रोफेसर राइडर (Prof. Ryder) के विचारों से सहमत होंगे जिनके अनुसार, "ऋतुओं का वर्णन न तो कालिदास की छवि में कोई सकारात्मक सुधार करता है और न ही कोई नकारात्मक प्रभाव छोड़ता है।"

अभ्यास-1

(अ) निम्न के लिए 'सही' या 'गलत' बताईये:

(i) रितुसंहार कालिदास की सबसे लंबी कविता है।

(ii) रितुसंहार ऋतुओं के संबंध में है।

(iii) कालिदास उज्जैन के रहने वाले थे।

(iv) रितुसंहार का अर्थ 'ऋतुओं की माला' है।

(v) कुमारसंभव कालिदास की रचना है।

(ब) निम्नलिखित में कौन-सी कालिदास की रचना नहीं है

(i) रितुसंहार (ii) अभिज्ञानशकुतंलम

(iii) मालविका-अग्निमित्र (iv) बुद्धचरित

(स) कालिदास ..... के दरबार में थे

(i) अशोक (ii) समुद्रगुप्त

(iii) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (iv) कनिष्क

(ड) दीर्घ प्रश्न:

1. रितुसंहार पर एक निबंध लिखिए।
2. कालिदास द्वारा रितुसंहार में वर्णित विभिन्न ऋतुओं के विशिष्ट लक्षणों की विवेचना कीजिए।

संदर्भ सूची

1. बी०एस० उपाध्याय, "इंडिया इन कालिदास"
2. एम०आर० काले (अनुवादक), ऋतुसंहार ऑफ कालिदास, भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, 2007
3. आर०एस० पंडित (अनुवादक), 'ऋतुसंहार', जनरल बुक्स, 1947
4. टी०जी० मैंकर, 'कालिदास : हिज़ आर्ट एंड थॉट', 1971

2.2 प्राकृत साहित्य : गाथा सप्तशती

2.2.1 भूमिका

जब ऋग्वेद के स्त्रोतों का संकलन हो रहा था, उस काल में साधारण कबीलाई लोग एक सरल भाषा बोलते थे जो क्लासिकल संस्कृत भाषा परिवार की करीबी थी। वैदिक ग्रंथ स्वयं इस प्रकार की बोलियों के अंतर के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। भगवान बुद्ध (छठी शताब्दी ई०पू०) के काल में लोग ऐसी भाषाएँ बोलने लगे थे जो संस्कृत से बहुत अधिक सरल थीं। ये प्राकृत भाषाएँ कहलाती थीं जो तीन भिन्न चरणों में विकसित हुईं।

प्रथम चरण (600 ई०पू०-200 ई०पू०) पाली का था जो स्थविरवादिन बौद्धों की भाषा बन गई। इसके अतिरिक्त अशोक के अभिलेखों की प्राकृत और प्राचीन जैन सूत्रों की प्राकृत तथा आरंभिक संस्कृत नाटकों, जैसे अश्वघोष के नाटक, में प्रयुक्त प्राकृत, प्रथम चरण की प्राकृत भाषा के उदाहरण हैं। द्वितीय चरण (200 ई०पू० से 600 ई०) ऐसी प्राकृत का है जिसके पद क्लासिकल संस्कृत नाटकों में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त राजा हल की सतसई, गुनाध्या की वृहतकथा, और प्राकृत व्याकरण इस चरण में हुए प्राकृत के विकास को दर्शाते हैं। इन प्राकृत भाषाओं में शौरसेनी, जो आरंभ में उत्तर प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र में बोली जाती थी, मागधी - मौर्य दरबार और अशोक के अभिलेखों की भाषा, महाराष्ट्री - दक्कन के उत्तर-पश्चिमी भाग में बोली जाने वाली भाषा, तथा श्वेतांबर जैनों की गैर-धार्मिक भाषा और अर्ध-मागधी थी जो जैनों की पवित्र भाषा बन गई। ये प्राकृत के विभिन्न रूप थे। तीसरा चरण (600 ईस्वी से 1000 ईस्वी) अप्रभंश का है जो पश्चिमी भारत की वर्नाक्यूलर भाषा थी तथा जिसे मध्यकाल में साहित्यिक रूप प्राप्त हुआ। इसका प्रयोग गुजरात और राजस्थान के जैन लेखकों ने कविताएँ लिखने के लिए किया। इसी प्रकार की एक अविकसित प्राकृत कुछ बौद्ध कवियों द्वारा बंगाल में भी प्रयोग की गई जो बाद में आधुनिक बंगाली का आधार बनी।

2.2.2 गाथा सप्तशती

प्राकृत में रचित गाथा सतसई संस्कृत भाषा में गाथा सप्तशती के नाम से लोकप्रिय है। यह गहकोश के नाम से भी जानी जाती है जिसमें महाराष्ट्री प्राकृत में 100 उत्कृष्ट गीतात्मक और आकर्षक काव्यों का संकलन है। क्योंकि प्राकृत आम लोगों की बोली थी अतः ऐसा विचार था कि संस्कृत की अपेक्षा इस बोली का अधिक भावनात्मक आकर्षण होगा। इस रचना में चुनी हुई उत्तम गीतात्मक कविताएँ हैं। ये एक दूसरे से स्वतंत्र, असंबद्ध, अर्थपूर्ण, 'लक्षण' और 'अभिधा' की अपेक्षा प्रतीकात्मकता में प्रखर और गहरी भावनात्मकता से परिपूर्ण हैं। अतः यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है कि ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में ही प्राकृत काव्य रचना उत्कृष्टता के शिखर तक पहुँच गई थी।

गाथा सतसई के संकलनकर्त्ता हल (कवि-वात्सल्य) हैं जो कुंतल जनपद के शासक थे। 'कुंतल प्रदेश' आधुनिक आंध्र प्रदेश के हैदराबाद के दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। अपनी रचना में राजा हल स्वयं कहते हैं कि उन्होंने लाखों कविताओं में से केवल 700 गाथाओं की रचना, बल्कि संकलन, किया है। ये 700 गाथाएँ अनेक अलंकारों (प्रतीकात्मक शैली) से सुसज्जित हैं।

यह पुस्तक आंध्र और महाराष्ट्र के लोगों के इतिहास और संस्कृति पर राजा हल के पहले, उनके शासनकाल और इसके उपरांत के काल पर अत्यधिक जानकारी प्रस्तुत करती है। इसमें लोगों के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों से संबंधित जानकारियाँ उल्लेखनीय हैं। परंतु इस पुस्तक में उत्तरपठ (साधारणतः उत्तरी भारत), हिमालय और गंगा का किसी भी गाथा में उल्लेख नहीं है। जहाँ यमुना नदी

का उल्लेख केवल एक बार आया है वहीं विंध्य पहाड़ीश्रृंखला का बार-बार उल्लेख मिलता है। दक्कन की नदियों में गोदावरी, नर्मदा या रेवा, तापी या ताप्ती का अलग-अलग संदर्भों में उल्लेख है। राजा हल, जो सातवाहन शासकों के वंश के सोलहवें शासक थे का शासन ईसा की पहली शताब्दी के पूर्वार्ध में था। अतः संस्कृति और सभ्यता की जो सामाजिक तस्वीर गाथा सप्तशती में प्रकट होती है वह लगभग ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी और ईसा की दूसरी शताब्दी के बीच के काल की है।

गाथा सप्तशती एक संकलित रचना है अतः इसमें हमें कई कवियों, पुरुषों और स्त्रियों के नामों का उल्लेख मिलता है। कवियों में इसमें रैराज (रतिराज), मियांग (मृगांक), हल, पवरसेन (प्रवरसेन), केसव (केशव), गुनाध्या, अनिरुद्ध, मारांद (मकरंद), कुमरिल, चंदासामी (चंद्रास्वामिन), अवंतिवम्म (अवंतिवर्मन), हरिउद्ध (हरिवृद्ध), नंदीउद्ध (नंदीवृद्ध), पोत्तिसा, भोज आदि का उल्लेख है। कवियत्रियों में रेवा, शशिप्पहा (शशिप्रभा), रोहा, गिरिसुता, गुणमुग्धा आदि का वर्णन है। इस रचना के प्रेम गीतों की लोकप्रियता इसी बात से आंकी जा सकती है कि इसके कम से कम छह संस्करण हैं और इस पर अट्ठारह टीके (Commentaries) लिखे गए हैं। जैन लेखकों ने भी इस पर टीका लिखा है। टीकाकारों ने गाथा सप्तशती के पदों की बिहारी सतसई के दोहों से तुलना की है। प्राकृत के इस संग्रह में प्रेम, संवेदनशीलता और इंद्रिय-संबंधी भावनाओं को स्त्री आवाज़ में व्यक्त किया गया है। इस कृति में स्त्रियाँ पतिव्रता, सच्चरित्र, और निष्ठावान हैं या फिर स्वछंद (स्वैरिणी), निष्ठाहीन या विश्वासघाती, प्रेमिका या गणिका हैं। वे प्राकृतिक दृश्यों, वर्षा, बादल, मोर के नृत्य, फव्वारा, विंध्य, सहयाद्रि, नर्मदा और गोदावरी की बातें करती हैं जो इस रचना की अधिकतर कविताओं की स्थानीयता को दर्शाता है। यह संग्रह सूक्तियों, और लोकप्रिय कहावतों का समृद्ध संकलन है तथा समकालीन समाज के लोकप्रिय रिवाजों और विश्वासों को प्रचुर मात्रा में उजागर करता है। यदि पूर्णरूप में अवलोकन किया जाए तो इस रचना की कविताएँ विरह और बिछोह, दुख और रोष, और सबसे अधिक प्रेम पर केंद्रित हैं जिसे काव्यात्मक और कलात्मक तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

हल की 'गहसतसई', अमारु की 'अमारुशतक', और गोवर्धन की 'आर्यसप्तशती' प्राकृत और संस्कृत में लिखी गई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गीतात्मक रचनाएँ हैं जिनमें प्रेम से संबंधित संवेदनशील भावनाओं को व्यक्त किया गया है। इन रचनाओं का बाद के लेखकों पर गहरा प्रभाव पड़ा जैसे बिहारीलाल जिन्होंने 'दोहाछंद' या 'अका-ग्रंथ' (गीतात्मक कविता) की रचना की जो ब्रज बोली में लिखी गई 700 पदों की रचना थी तथा जिसे सतसई कहा गया। इस रचना के कई पद राजा हल की 'गहसतसई' पर आधारित हैं।

गाथा सप्तशती की कुछ चुनिंदा गाथाएँ जिनमें भावनाओं को सीमित शब्दों में व्यक्त किया गया है तथा जिनमें विचारों और गहरी भावनाओं का समावेश है इस प्रकार हैं-

कोई भी व्यथा इतनी बड़ी नहीं है जितनी प्रेमी और प्रेमिका का एक दूसरे से अलग रहना। यह व्यथा तब और अधिक बढ़ जाती है जब प्रेमी अपनी प्रेमिका को छोड़ कर चला जाता है। एक स्त्री जिसका पति घर से दूर चला गया है प्रेम के कारण मानसिक व्यथा से ग्रस्त हो उठती है। संस्कृत साहित्य में इसे 'प्रोसित-पातिकी' कहा गया है।

- बिच्छू से काटे जाने के बहाने स्त्री अपने पति की उपस्थिति में अपने प्रेमी के पास ले जायी गयी जो वैद्य था। प्रेमी ने स्त्री को अपने हाथों से पकडा़ और स्त्री इस समय गीत गा रही थी।
- बिछोह में प्रेमिका जहर के समान दुखदायी है परंतु वहीं प्रेमिका से मिलन अमृत समान है। क्या ईश्वर ने उसकी (प्रेमिका) रचना इन दोनों तत्त्वों को समान रूप से समाहित करके की है?

- हे मेरी सास! प्रेमी सदैव मनमोहक है, आखों के लिए उसका दृश्य लुभावना है, विचार करने पर वह मन के लिए आकषर्क है, और बातें करने पर वह कर्णप्रिय है।
- व्यभिचारी स्त्री ने कुते को खाने और पानी से इस प्रकार पालतू बना दिया है कि यह कुत्ता स्त्री के प्रेमी का तो स्वागत करता है पर उसके पति के घर में प्रवेश करने पर भौंकता है।
- नायिका पत्र लिखकर अपने पति तक पहुँचने का प्रयास करती है। पर वह कलम द्वारा पूरा पत्र लिख पाना तो दूर 'स्वस्ति' शब्द ही लिख पाने में असमर्थ है।
- नायिका अपनी मानसिक अवस्था की व्याख्या करते हुए अपनी सखी से कहती है, "कलम कांपते हुए तथा पसीजे हाथ में पकड़ा था, जो बार-बार लड़खड़ा रहा था, ओ मेरी प्रिय सखी, मैं तो 'स्वस्ति' शब्द लिखने में भी असमर्थ थी अत: किस प्रकार मैं पूरा पत्र लिख पाती।"
- अंतत: जब उसकी (स्त्री की) सभी आशाएँ धूमिल हो गईं वह प्रेम के कारण उत्पन्न हुए अपने विषाद को व्यक्त करते हुए 'चाँद से प्रार्थना करती है कि वह उसे उन्हीं किरणों से छुए जिससे उसने उसके प्रेमी को छुआ है जो एक दूर स्थान में यात्रा कर रहा है'।
- समय फिर भी गुजर जाता है। अब समय उसके पति के वापस लौटने का है। पर स्त्री सोचती है, "मैं क्या करूँ? मैं कैसा व्यवहार करूँ?", "क्या मैं अपनी नाराज़गी दिखाऊँ?" और "क्या वह मुझे मनाने का प्रयास करेगा?" उसे यह नहीं पता कि पति को वह कैसे मिले। जब वह वास्तव में आ गया, यह अवसर खुशी का था। परंतु उसने स्वयं को त्यौहार वाले वस्त्रों से सजाने में हिचकिचाहट की जिसका कारण यह था कि वह अपने पड़ोस की स्त्री की विरह-वेदना को और तीव्र नहीं करना चाहती थी जिसका पति अभी भी यात्रा पर था।
- एक स्त्री अतिथि से वार्तालाप कर रही है, "हे अतिथि, क्योंकि आप रात के अंधेपन (रतौंधी) से पीड़ित हैं, अत: दिन की रोशनी में मेरी सास के सोने के स्थान को देख लीजिए; कहीं ऐसा न हो कि लापरवाही में आप उनकी चारपाई पर गिर पड़े" यहाँ स्त्री अतिथि को अपने बिस्तर के पास न आने की चेतावनी दे रही है क्योंकि रात्रि में उसकी सास समीप ही सो रही होंगी पर वास्तव में वह अतिथि को रात में अपने बिस्तर पर आने का निमंत्रण दे रही है।

2.2.3 उपसंहार

इस प्रकार गाथा सप्तशती, जो गीतात्मक और कामोत्तेजक पदों से परिपूर्ण है, प्राकृत भाषा में रचित पहली पुरोगामी कृति है। इस रचना ने भारत के विभिन्न भागों में प्राकृत साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। सातवाहन राजा हल द्वारा संकलित यह रचना तत्कालीन समय के आंध्र और महाराष्ट्र क्षेत्र के लोगों के सामाजिक-आर्थिक और धार्मिक जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्यों को उजागर करती है।

अभ्यास-2

(अ) निम्न में 'सही' या 'गलत' बताईये-

(i) गाथासप्तशती राजा हल द्वारा लिखी गई रचना है

(ii) गाथासप्तशती शुद्ध संस्कृत भाषा की रचना है।

(iii) राजा हल सातवाहन राजा थे।

(iv) बिहारी सतसई की रचना गद्य रूप में है।

(v) राजा हल कवि-वात्सल के नाम से भी जाने जाते थे।

(ब) इनमें से किस कवि का उल्लेख गाथासप्तशती में नहीं है?

(i) गुनाध्या (ii) प्रवरसेन

(iii) हरिसेन (iv) चंद्रस्वामी

(स) गाथासप्तशती ..... में लिखी गई है:

(i) मगधी (ii) हिंदी

(iii) प्राकृत (iv) संस्कृत

(ड) संक्षिप्त टिप्पणी:

(i) गाथासप्तशती

(च) गाथा सप्तशती के आधार पर सातवाहन शासक हल के काल की भौतिकवादिता के विकास का विश्लेषण कीजिए।

संदर्भ सूची

1. ए.एल. बाश्म, 'द वंडर दैट वाज़ इंडिया', खंड-1, नई दिल्ली, 1981
2. जगन्नाथ पाठक, 'गाथा सप्तशती', चौखंबा, वाराणसी, 1969
3. जे.सी.जैन, 'हिस्ट्री एंड डेवलपमेंट ऑफ प्राकृत लिट्रचेर' मनोहर, 2004
4. परमानंद शास्त्री, 'गाथा सप्तशती', प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ, 1965
5. राधा गोविंद बसाक, 'गाथा सप्तशती', द एशियाटिक सोसाइटी, 1971
6. राई डेविस, 'हिस्ट्री ऑफ प्राकृत लिट्रेचर'।

2.3 हिंद-फ़ारसी साहित्य : अमीर ख़ुसरो की रचनाएँ

2.3.1 भूमिका

यह अध्याय हिंद-फ़ारसी साहित्य के उद्गम और विकास को प्रस्तुत करता है जिसे मुख्य रूप से अमीर ख़ुसरो के जीवन और उनकी रचनाओं की परिधि में वर्णित किया गया है। इसका कारण यह है कि अमीर ख़ुसरो ने हिंद-फ़ारसी साहित्य को अनेक नवीनताओं जैसे ग़ज़ल, कसीदा, मरसिया, प्रेम-आख्यान और सैकड़ों गद्य रचनाओं से लोकप्रिय बनाया। उन्होंने न केवल हिंद-फ़ारसी साहित्य को लोकप्रिय बनाया बल्कि स्थानीय संस्कृत और हिंदी भाषाओं में अपनी जन्मभूमि (भारत) की प्रशंसा पर गर्व भी किया।

2.3.2 हिंद-फ़ारसी साहित्य का भारत में उद्गम

एक साहित्यिक भाषा के रूप में फ़ारसी ने 10वीं शताब्दी में इस्लामिक संसार के पूर्वी भागों जैसे इरान, अफ़गनिस्तान, मध्य एशिया, भारत और अनातोलिया में वैसी ही भूमिका निभाई जैसी अरबी ने पश्चिमी भागों जैसे अरब, लिवांट, मिश्र और उत्तरी अफ्रीका में। फ़ारसी और अरबी दोनों ही भाषाएँ इस्लामिक राजनीतिक क्षेत्रों की सांस्कृतिक और प्रशासनिक भाषाएँ थीं।

तुर्क, जो 10वीं शताब्दी के अंत में भारत आये, फ़ारसी भाषा से अत्यंत प्रभावित थे। इसका कारण यह था कि फ़ारसी 10वीं शताब्दी से मध्य एशिया और इरान की साहित्यिक भाषा बन गई थी।

इस प्रकार भारत में जहाँ अरबी (पैगंबर मुहम्मद की भाषा) केवल मुस्लिम बुद्धिजीवियों और दार्शनिकों की संकीर्ण परिधि में ही सीमित रही, वहीं फ़ारसी साहित्य और प्रशासन की भाषा के रूप में उभरी। इस प्रकार भारत में हिंद-फ़ारसी भाषा का उद्‌गम तुर्कों के आगमन के साथ देखा जा सकता है।

फ़ारसी साहित्य का अधिकतर भाग, विशेष रूप से हिंद-फ़ारसी साहित्य का प्रकाशन, ऐसे लेखकों की रचनाएँ हैं जो या तो भारतीय थे या वे लोग जिन्होंने भारत में अपनी रचनाएँ लिखीं।

भारत नई उभरती फ़ारसी संस्कृति के संपर्क में 7वीं शताब्दी के तीसरे भाग में आया जब सिंध प्रांत इरान के सफाविद साम्राज्य का हिस्सा बन गया। परंतु फ़ारसी भाषा और भारतीय उपमहाद्वीप में और अधिक औपचारिक निकटता 11वीं शताब्दी में स्थापित हुई जब महमूद गज़नवी ने पंजाब को अपने अधीन कर लिया।

गज़नी में महमूद द्वारा संस्थाओं में नवीनताओं के प्रयोग मुख्य रूप से 'मलिक अल-शु'अरा' (विशिष्ट कवि) के पद की स्थापना को साहित्य में शाही और दरबारी संरक्षण के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया है।

गज़नी से फ़ारसी साहित्यिक संस्कृति का प्रार्दुभाव लाहौर में हुआ जो हिंदूस्तान में महमूद गज़नवी के अभियानों का सामरिक गढ़ था। लाहौर में लूट से प्रेरित योद्धाओं (गाज़ी) के अतिरिक्त फ़ारसी बोलने वाले बड़ी संख्या में इस शहर में बसे। इस कारण लाहारै एक महत्त्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभरा जो राजनैतिक और सामाजिक रूप में ग़ज़नी के ही समान था। धीरे-धीरे लाहौर ने इरान, खुरासन तथा मध्य एशिया के अन्य भागों से अनेक बुद्धिजीवियों और साहित्यिक विभुतियों को अपनी ओर आकर्षित किया। इस प्रकार लाहौर शहर भारत में और विशेष रूप से पंजाब क्षेत्र में फ़ारसी भाषा के उत्थान के सबसे पहले केंद्र के रूप में उदित हुआ जो उच्च फ़ारसी साहित्यिक परंपरा के आरंभ और इसके विकास का साक्षी बना। इस क्षेत्र और इसके आसपास के इलाकों से (जिसमें सिंध का उच्छ क्षेत्र भी शामिल है) जिन कवियों का संबंध था, उनमें महान कवि अबुल फराज़ रुनी और मसूद साद सलमान थे। ये फ़ारसी साहित्य के आलोचकों द्वारा फ़ारसी के प्रर्वतक और नई शब्दयोजना के उस्ताद माने गये।

12वीं शताब्दी में उत्तरी भारत पर गौर (Ghurids) के विजय के उपरांत दिल्ली मुस्लिम शासकों की राजधानी के रूप में उभरी और उसी काल में ग़ज़नी अपनी पुरानी ख्याति खोता चला गया। फलतः लोगों ने इस शहर से दिल्ली पलायन करना आरंभ कर दिया। इसमें उच्च वर्ग के लोग, बुद्धिजीवी तथा प्रबुद्ध लोग शामिल थे। इसके कारण दिल्ली फ़ारसी अध्ययन का एक बड़ा और प्रमुख केंद्र बन गया। इसके उपरांत फ़ारसी दिल्ली और इसके आस-पास के क्षेत्रों में फलने-फूलने लगी। चंगेज़ ख़ान के नेतृत्व में मंगोलों द्वारा फ़ारसी-इस्लामी संसार को ध्वस्त करने के पश्चात् इन क्षेत्रों से कवियों, सूफियों, न्यायविदों, लेखकों, कारीगरों, दरबारियों तथा अन्य गणमान्य लोगों का लगातार पलायन होता रहा जिन्होंने भारत की शांतिपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था में शरण ली। इन समूहों के लोगों की फ़ारसी परंपरा उत्तरी भारतीय संस्कृति में रच-बस गई। इसके साथ-साथ बड़ी संख्या में इरान और मध्य एशिया तथा अन्य इस्लामिक क्षेत्रों के समर्पित मुस्लिम धर्मप्रचारक भारत में सक्रिय थे। इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय इरानी या फ़ारसी भाषा के सूफी थे जिनका साधु-संतों जैसा व्यवहार और शिक्षाएँ न केवल बहुत सारे भारतीयों को इस्लाम में परिवर्तित करने के प्रमुख कारक सिद्ध हुए बल्कि इस कारण फ़ारसी भाषा और संस्कृति का भी विस्तार हुआ। इन्होंने भारत में अनेक सूफी सिलसिलाओं की भी आधारशिला रखी। फ़ारसी के गीतात्मक काव्य सूफियों में सदैव लोकप्रिय रहे हैं जिनके द्वारा सूफियों ने अपने ईश्वर के प्रति प्रेम और मेल की उत्कंठा को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त किया। इस प्रकार, सूफी भाईचारा और उनकी

ख़ानकाह फ़ारसी कविताओं के भारतीय मुसलमानों में उत्कर्ष का एक ज़रिया बन गई। सूफी संवाद (मलफूज़), पत्र तथा धार्मिक कार्यकलापों पर वकतव्य सब फ़ारसी भाषा में लिखे गये।

13वीं, 14वीं तथा 15वीं शताब्दियों के दिल्ली के सुल्तानों ने फ़ारसी लेखकों तथा कवियों और सिद्ध-पुरुषों को 'इमलक', 'औकफ़', 'इद्ररत', 'वज़ीफ़ा' आदि भूमि-अनुदान द्वारा उदार संरक्षण प्रदान किया। दिल्ली सल्तनत के विघटन के उपरांत भी मुस्लिम राज्यों जैसे कश्मीर, गुजरात, बंगाल और उत्तरी दक्कन के बहमनी राज्य में फ़ारसी को निरंतर राजकीय संरक्षण प्राप्त होता रहा। इसने मुस्लिम शासन को विस्तृत करने में सहायता प्रदान की और साथ ही इसका विस्तार भी हुआ। इसका विस्तार लगभग पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में हुआ जिसमें पूर्व में बंगाल और दक्षिण में हैदराबाद शामिल हैं। हालांकि इन राज्यों के शासकों के वंश इरानी मूल के नहीं थे परंतु सास्कृतिक रूप से वे इससे जुड़े हुए थे और इस प्रकार ये शासक फ़ारसी भाषा, साहित्य और फ़ारसी तौर-तरीकों के प्रयासकर्ता सिद्ध हुए। भारत में फ़ारसी भाषा और साहित्य को और अधिक समृद्ध बनाने में भारतीय मलू के महान फ़ारसी कवियों का योगदान रहा। अबुल फ़राज़ रुनी और मसूद साद सलमान (दोनों लाहौर के) जो कि भारत में फ़ारसी साहित्य के अग्रणी थे, के अतिरिक्त कई अन्य विशिष्ट व्यक्तियों जिन्होंने भारतीय फ़ारसी साहित्य को मज़बूत आधार देने में कोई कम भूमिका नहीं निभाई उनमें उस समय के प्रसिद्ध फ़ारसी विद्वान तजाउद्दीन थे जो भारतीय मूल के फ़ारसी कवि थे। तजाउद्दीन दिल्ली के मूल निवासी थे जहाँ वे सुल्तान इल्तुतमिश के शासनकाल में रहे। अन्य दो फ़ारसी कवि जो स्थानीय मूल के थे तथा जिनकी रचनाएँ उपलब्ध हैं वे शिहाबुद्दीन और अमीनुद्दीन थे। जहाँ शिहाबुद्दीन बदायुँ के मूल निवासी थे वहीं अमीनुद्दीन पंजाब में सनम क्षेत्र के रहने वाले थे जो पटियाला के समीप स्थित था।

इन दोनों कवियों के उपरांत दो अन्य कवियों जिनका फ़ारसी साहित्यिक पटल पर पदार्पण हुआ वे ख्वाज़ा हसन सिज्जी देहलवी और अमीर ख़ुसरो देहलवी थे। इन दोनों का चिश्ती सूफी निज़ामुद्दीन औलिया की ख़ानकाह से घनिष्ठ संबंध था। हिंद-फ़ारसी साहित्य के विकास में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान के अतिरिक्त, उनकी कविताएँ, जो धार्मिक और सांप्रदायिक सीमाओं से परे हैं, सार्वभौमिक सूफी संदेश के लिए भी उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार भारत में फ़ारसी भाषा के लेखक या तो मध्य एशिया से आये हुए निवासी थे या उन लोगों के वंशज थे जिनकी फ़ारसी या तो मातृभाषा या प्रथम भाषा थी। भारत की सांस्कृतिक स्थिति की व्याख्या करते हुए, जिसमें फ़ारसी संसार के विभिन्न क्षेत्रों से आने वाले लोगों की एक प्रमुख साहित्यिक भाषा बनी, मोहम्मद वाहिद मिर्ज़ा विचार व्यक्त करते हैं कि इन सभी लोगों की सामान्य भाषा केवल फ़ारसी थी और इन आरंभिक निवासियों ने हिंद-फ़ारसी संस्कृति की आधारशिला रखी जो 16वीं और 17वीं शताब्दी में मुगलों के सरंक्षण में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची।

2.3.3 अमीर ख़ुसरो और उनकी रचनाएँ

समकालीन और आधुनिक आलोचकों के अनुसार मुगल काल के पूर्व के सभी महान हिंद-फ़ारसी कवियों में अमीर ख़ुसरो सबसे महान थे। इसका कारण यह था कि उन्होंने गद्य तथा विभिन्न प्रकार के फ़ारसी पद्य लेखन में न केवल अपने पूर्वकालीन और समकालीन लेखकों से अधिक उत्तमता हासिल की अपितु उन्होंने फ़ारसी काव्य में भारतीय शैली की आधारशिला भी रखी जो बाद में मुगलकालीन लेखकों के लिए अनुसरण करने का प्रतिरूप बनी। उन्होंने फ़ारसी लेखन की विभिन्न विधाओं जैसे 'कसीदा', 'मसनवी', 'ग़ज़ल', 'रुबाईयत', 'कता' जो दर्शन, प्रेम, सूफीवाद आदि की व्याख्या करते थे में कुशलता प्राप्त कर ली थी। ख़ुसरो के लेखन के संदर्भ में यह बताना महत्त्वपूर्ण है कि यह एक ऐसा काल था

जिसमें दिल्ली के सुल्तान न केवल उत्तरी भारत में राजनैतिक केन्द्रीकरण स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे बल्कि इसके साथ-साथ इस क्षेत्र का सामान्य जीवन भी फ़ारसी भाषा और संस्कृति से प्रभावित हो रहा था जो तत्कालीन हिंद-इस्लामिक संस्कृति में हो रहे समन्वय की प्रक्रिया का एक भाग था। उसी काल में फ़ारसी स्वयं भी उत्तर भारतीय भाषाओं के संपर्क से प्रभावित हुई जिसका प्रतिबिंब फ़ारसी में प्रयुक्त किये जाने वाले हिंदवी शब्दों, रूपकों आदि में झलकता है। यह प्रभाव भूतपूर्व फ़ारसी कवियों जैसे मसूद साद सलमान की रचनाओं में दिखता था। भारतीय-फ़ारसी शैली की इस प्रकार रचना, जो साहित्यिक आलोचकों में 'सबक-ए-हिंदी' के नाम से जानी जाती है, वस्तुतः फ़ारसी भाषा और भारतीय संस्कृति के मध्य हो रहे संपर्क की महत्वत्ता को दर्शाती है। इसका विकास एक ओर भारतीय साहित्यिक रचनाओं और दूसरी ओर इरान, अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया के निरंतर संपर्क का परिणाम था।

अबुल हसन यामिनुद्दीन ख़ुसरो, अमीर ख़ुसरो के नाम से लोकप्रिय, का वंश कुलीन वर्ग से संबंधित था। उनके पिता, अमीर सैफुद्दीन महमूद, भारत में एक प्रवासी थे और उत्तर प्रदेश के ऐटा जिले के पटियाली में बस गए थे। वे सुल्तान इल्तुतमिश की सेना में 'अमीर' के पद पर कार्यरत थे। अमीर ख़ुसरो की माता इमाद-उल-मुल्क की पुत्री थी जो तत्कालीन दिल्ली सल्तनत के अग्रणी कुलीन थे। अमीर ख़ुसरो का जन्म पटियाली में हुआ और उनके पिता की मृत्यु के पश्चात उनका पालन-पोषण उनके नाना इमाद-उल-मुल्क ने किया जो स्वयं कवियों और विद्वानों के बड़े संरक्षक थे। इस प्रकार ख़ुसरो ने न केवल अच्छी शिक्षा प्राप्त की अपितु अपने जीवन का प्रारंभिक काल प्रसिद्ध कवियों और विद्वानों के सान्निध्य में बिताया।

अमीर ख़ुसरो ने ऐसे काल में लेखन किया जब कला और काव्य का संरक्षण से करीबी संबंध था। कवि और कलाकार स्वयं को राजाओं और कुलीनों जिनके लिए वे कार्य करते थे से जुड़े रहना पड़ता था तथा जिसके लिए उन्हें पारितोषिक मिलता था। इनका भरण-पोषण भी संरक्षकों द्वारा किया जाता था। यद्यपि संरक्षण के कुछ नकारात्मक परिणाम भी थे (जैसे विभिन्न कलाकारों के मध्य प्रतिद्वंद्विता, ईर्ष्या आदि जिससे वे अपने संरक्षक का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास करते थे तथा मिथ्या प्रशंसा जो अंततः चाटुकारिता में परिवर्तित हो जाती थी) परंतु दूसरी ओर संरक्षण कलाकारों और कवियों को भौतिक जीवन की आवश्यकताओं की चिंताओं से मुक्त रखता था और उन्हें पूर्णरूप से अपने कार्य में समर्पित रहने का अवसर देता था। इसके अतिरिक्त संरक्षण का एक अन्य लाभ यह हुआ कि इसके द्वारा मध्यकालीन भारतीय शासक वर्ग की त्रुटिरहित रुचियों का भी कला में समावेश हुआ।

ख़ुसरो ने बहुत छोटी उम्र से ही कविताएँ लिखना प्रारंभ कर दिया था और ज्यों-ज्यों उनकी प्रसिद्धि फैली उन्हें दिल्ली के विभिन्न सुल्तानों और राजकुमारों का संरक्षण प्राप्त हुआ। एक दरबारी के रूप में ख़ुसरो ने अपने समय के सभी दिल्ली सुल्तानों की सेवा की। सुल्तानों ने ख़ुसरो को संरक्षण न केवल उनकी असाधारण काव्य प्रतिभा और विद्वता के लिए दिया अपितु जैसा कि आधुनिक विद्वानों का मत है, उनकी सौम्यता, सहृद व्यवहार, उनके जीवंत विद्वतापूर्ण आख्यान, वाकपुट्ता तथा स्वछंद व्यंग्य के गुणों के लिए भी दिया। यही कारण है कि ख़ुसरो ने अपने लेखन में अपने संरक्षकों (राजकुमार मलिक छज्जू, राजकुमार महमूद, और सुल्तान कैकूबाद, जलालुद्दीन ख़लजी, अलाउद्दीन ख़लजी, मुबारक शाह ख़लजी और गयासुद्दीन तुगलक) के प्रति अपनी कृतज्ञता अत्यंत सुंदर शैली में प्रशंसा द्वारा प्रकट की है।

अमीर ख़ुसरो की रचनाएँ जिनका संकलन 1272-1375 ईस्वी के अंतराल में हुआ निम्नलिखित वर्गों में विभाजित हैं -

1. पाँच दीवान (जो ग़ज़ल, कविताओं, प्रशंसात्मक रचनाओं, मरसिया आदि का समूह है) - तुहफत-उस-सिघार (यौवन का उपहार, 1272 ईस्वी), वसथ-उल-हयात (जीवन के चरण, 1283 ईस्वी), गुर्रत-उल-कमाल (पूर्णता के राजकुमार, 1294 ई०), बकिया-नकिया (पवित्रता के अवशेष, 1316 ई०), और निहायत-उल-कमाल (पूर्णता के शिखर 1325 ई०)।

2. पाँच मसनवी जो निज़ामी (1141-1202 ई०) के खाम्स (पाँच मसनवी) पर आधारित हैं - मत्ला-उल-अनवर (प्रकाश का उदय, 1299 ई०) शिरीन-व-खुसरो (खुसरो और शिरीन की प्रेम कहानी, 1299 ई०), मजनू-व-लैला (लैला-मजनू की काल्पनिक प्रेम कहानी, 1299 ई०) आइना-ए-सिकंदरी (सिकंदर का आइना, 1301 ई०), और हश्त बिहिश्त (आठ स्वर्ग, 1302 ई०)।

3. पाँच ऐतिहासिक मसनवी - किरान-उस-सादेन (दो सितारों का मिलन, 1289 ई०), मिफताह-उल-फुतुह (विजयों की कुंजी, 1291 ई०), खिज़्र ख़ान-व-देवल रानी (देवल रानी और खिज़्र ख़ान की प्रेम कहानी जिसे 'आशिका', 'इश्किया' और 'मंशूर शाही' के नाम से भी जाना जाता है 1315 ई०), नुह सिपेहर (नौ आकाश, 1318 ई०) और तुगलक नामा (1325 ई०)।

4. गद्य रचनाएँ - ख़जायन-उल-फुतुह (विजयों का कोषागार, इसे तारीख-ए- अलाई के नाम से भी जाना जाता है, 1311 ई०), अफज़ल-उल-फवैद (उत्कृष्ट आर्शीवाद, 1321-25 ई०) और इजाज़-ए-खुसरवी (खुसरो की प्रेरणा, संकलन 1283-1320 ई०)।

विभिन्न सुल्तानों और राजकुमारों के संरक्षण में अमीर खुसरो ने बड़ी संख्या में ऐतिहासिक और रोमांचक मसनवी लिखीं जो इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, संदुर भौगोलिक दृष्य, दर्शन, धर्म, खगोल विज्ञान पर जानकारी प्रदान करती हैं। खुसरो ने प्रेम पर भी लिखा जिसमें उन्होंने रूपकों, कल्पना तथा उपमाओं का प्रयोग किया। उनकी पहली ऐतिहासिक मसनवी किरान-उस-सादेन, दिल्ली के सुल्तान कैकूबाद और उनके पिता के मिलन का वृतांत है। इसमें बुगरा ख़ान, जो एक सहृद पिता था और दिल्ली सुल्तान कैकूबाद जो एक कर्तव्यहीन पुत्र था के मिलन का जीवंत वर्णन है। सुल्तान कैकूबाद का इतिहासकारों ने एक असभ्य और मूर्ख शासक के रूप में वर्णन किया है परंतु खुसरो ने अपनी रचनाओं द्वारा कैकूबाद के नाम को प्रसिद्ध और रोशन करने का प्रयास किया है। यद्यपि यह रचना कसीदों और ग़ज़लों को जोड़ कर लिखी गई है, परंतु इसे ऐतिहासिक घटना का प्रत्यक्षदर्शी वर्णन कहा जाता है। इसमें कवि ने ग़ज़लों का प्रयोग पिता-पुत्र के मिलन की घटना के संदर्भ में उत्पन्न हुई अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए किया है। इस प्रकार कवि जो इस घटना का साक्षी था स्वयं को इस घटना के समक्ष देखता है जिसके परिणामस्वरूप वह गीतात्मक और काव्यात्मक शैली को मिश्रित करने में सफल रहा है।

यद्यपि कहानी का विषम नीरस है, खुसरो ने इसे दिल्ली के रूपों के विविध वर्णनों से, जैसे इमारतें, सुल्तान के दरबार के वैभव, कुलीनों और अधिकारियों के सामाजिक जीवन, मंगोलों के दमन तथा इसके साथ-साथ दिल्ली और इसके आसपास की प्राकृतिक सपं दाओं के वणर्न से रुचिकर बना दिया है।

मिफताह-उल-फुतुह खुसरो की एक अन्य ऐतिहासिक मसनवी है। यह सुल्तान जलालुद्दीन ख़लजी (जो खुसरो का पुराना प्रशंसक था) के सैन्य अभियानों की व्याख्या करती है, यह मलिक छज्जू (जिसके संरक्षण में कवि ने अपना सार्वजनिक जीवन शुरु किया) के विद्रोह और उसके दमन तथा सुल्तान की रणथंबौर के सैन्य अभियान में कड़ा और झाइन में मिली विजयों का भी वर्णन करती है।

खुसरो की एक अन्य साहित्यिक रचना ख़ज़ायन-उल-फुतहु है जो सुल्तान अलाउद्दीन ख़लजी के पहले पंद्रह वर्षों के शासन का प्रशंसात्मक वर्णन है। यद्यपि यह एक गद्य रचना है परंतु इसका महत्व इस तथ्य में निहित है कि अलाउद्दीन ख़लजी के शासन काल की यह केवल एक ही रचना है। इसमें खुसरो

ने अलाउद्दीन की गुजरात, चित्तौड़, मालवा और वारंगल तथा सुल्तान के सेनाध्यक्ष मलिक काफूर के दक्कन अभियान का प्रत्यक्षदर्शी वणर्न किया है। इस रचना की ऐतिहासिक महत्वत्ता इस तथ्य में भी निहित है कि यह अलाउद्दीन ख़लजी के प्रशासनिक सुधारों तथा साथ ही साथ उसकी सल्तनत और सेना का विस्तृत वर्णन भी प्रस्तुत करती है। यह रचना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह अलाउद्दीन की गुजरात और मालवा विजयों के वर्णन के साथ-साथ इन क्षेत्रों की भौगोलिक जानकारी भी प्रदान करती है।

इस मसनवी का अन्य पक्ष देवल रानी और खिज़्र ख़ान का प्रेम है। इसे ख़ुसरो ने अपनी काल्पनिकता की प्रचुरता तथा प्रेमियों की पीड़ा और विरह-वेदना के वर्णन से रोमांचक साहित्य की 'अनुपम' कृति बना दिया है। परंतु ख़ुसरो की सभी रचनाओं में नुह सिपेहर (नौ आकाश) सबसे महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। यह न केवल उनके भारत के प्रति दृष्टिकोण को प्रकट करती है बल्कि उनकी असाधारण काव्य प्रतिभा को भी उजागर करती है। ख़ुसरो ने यह ऐतिहासिक मसनवी अपने संरक्षक मुबारक शाह ख़लजी के लिए लिखी, जिसे इतिहासकारों ने प्रशंसनीय रूप में नहीं देखा है। इस मसनवी का महत्व इस तथ्य में है कि इसमें अनेक विषयों का समावेश है जैसे ईश्वर की स्तुति, पैगंबर, मुबारक ख़लजी का सिंहासनारोहण, उसका देवगीर का सैन्य अभियान, दिल्ली का वर्णन और इस शहर की संसार के अन्य प्रमुख शहरों से अधिक उत्तमता। इसके साथ-साथ इसमें हिंदूस्तान की जलवायु, इसकी प्राकृतिक संपदा, विज्ञान, धार्मिक विश्वास और भाषाओं का भी विविध विवरण है।

यह रचना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह ख़ुसरो की जन्मभूमि के गौरव से परिपूर्ण है तथा इसलिए भी क्योंकि यह भारत को अनेक प्राकृतिक, भाषा और धार्मिक विविधताओं के बावजूद एक संगठित सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में प्रस्तुत करती है।

तुगलक नामा, ख़ुसरो की अंतिम ऐतिहासिक मसनवी है जिसे उन्होंने अपने संरक्षक गयासुद्दीन तुगलक के लिए लिखा। यह रचना गयासुद्दीन तुगलक के सफल सैनिक अभियान तथा ख़ुसरो ख़ान (एक शक्तिशाली कुलीन तथा दिल्ली का सुल्तान बनने का आकांक्षी) पर उसकी विजय के संदर्भ में बहुमूल्य ऐतिहासिक जानकारी प्रदान करती है। यद्यपि इन मसनवियों द्वारा ख़ुसरो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी प्रदान करते हैं परंतु फिर भी उनकी गणना इतिहासकारों में नहीं की जाती बल्कि उन्हें महान कवियों की श्रेणी में रखा जाता है। इतिहास के संदर्भ में देखें तो उनकी मसनवी विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती है। ख़ुसरो का सबसे मजबूत पक्ष यह है कि उन्होंने बहुत अधिक शृंखलात्मक विवरण दिया है जो अन्य इतिहासकार जैसे ज़ियाउद्दीन बरनी (समकालीन इतिहासकारा ं में सबसे प्रमुख) की रचनाओं से अधिक विश्वसनीय है। इसके अतिरिक्त ये मसनवी युद्ध रणनीति, सैन्य अभियान, शहर, व्यवसाय, नृत्य और संगीत आदि के वर्णन के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को भी प्रकाशमय करती है। इसका कारण यह है कि ख़ुसरो एक इतिहासकार की अपेक्षा कवि अधिक थे। अत: एक कवि के रूप में उनके विषयों का चुनाव एक इतिहासकार से भिन्न था। परिणामस्वरूप, समकालीन इतिहास लेखन में हम जो भी कमियाँ पाते हैं वे ख़ुसरो की रचनाओं से पूर्ण की जा सकती हैं।

ऐतिहासिक मसनवियों के अतिरिक्त ख़ुसरो ने अन्य मसनवियाँ भी लिखीं जो अनुपम कृतियाँ समझी जाती हैं तथा जिनकी तुलना फ़ारसी के महान कवि निज़ामी गंजवी की रचनाओं से की जा सकती है। अमीर ख़ुसरो की शिरीन-व-ख़ुसरो को, निज़ामी की मसनवी जो उसी नाम से रचित है, का अनुकरण माना जाता है। प्रेम प्रसंगों के विवरण के अतिरिक्त इसमें अलाउद्दीन ख़लजी का प्रशंसात्मक आख्यान है तथा यह कवि के खगोल विज्ञान और ज्योतिष ज्ञान को भी प्रकट करती है।

ख़ुसरो की एक अन्य मसनवी मजनू-व-लैला भी निज़ामी की इसी नाम की ही रचना का अनुकरण है। अलाउद्दीन ख़लजी के प्रशंसात्मक आख्यान के अलावा यह मसनवी लैला और मजनू के काल्पनिक प्रेम को वास्तविकता का रूप देती है। निज़ामी और ख़ुसरो की शिरीन-व-ख़ुसरो मसनवियों की तुलना करते हुए एम०डब्ल्यू० मिर्ज़ा लिखते हैं कि "ख़ुसरो ने इस प्राचीन प्रेम प्रसंग को अत्यधिक कलात्मक शैली में लिखा है जिसमें वे कहीं भी निज़ामी से कम नहीं दिखते।"

हश्त-बिहिश्त अमीर ख़ुसरो की एक अन्य मसनवी है जिसे आधुनिक विद्वानों ने इसकी विवरण शैली और पदों की परिपक्वता के लिए अत्यधिक सराहा है। पूरी रचना काल्पनिक कहानियों से परिपूर्ण है परंतु ये इतने सुंदर ढंग से लिखी गई है और इनमें तथ्यों को इतने अच्छे प्रकार से प्रस्तुत किया गया है कि इनमें सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरण को भी बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं पड़ी है। एस. एस. अब्दुर रहमान के अनुसार यह रचना का महत्त्वपूर्ण पहलू है और फ़ारसी भाषा की कोई भी मसनवी इस संदर्भ में इसकी तुलना नहीं कर सकती। एक अन्य विद्वान मौलाना सैयद सुलेमान अशरफ़ भी कहते हैं कि इस मसनवी में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो मसनवी लेखन कला के अलंकार माने जाते हैं। मसनवी के अतिरिक्त ख़ुसरो ने बड़ी संख्या में कसीदे, दीवान और ग़ज़लें लिखीं जिसके द्वारा पाठक को ख़ुसरो की कल्पनाशीलता और प्रवाहात्मक शैली के साथ-साथ उनकी विषयवस्तु के चुनाव की गहरी जानकारी के दर्शन होते हैं।

अमीर ख़ुसरो के जीवन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू उनका सूफीवाद से लगाव था। अपने संपूर्ण जीवन में एक दरबारी सेवक होने के नाते उनका समाज के विभिन्न वर्गों से मेल-जोल रहा, उन्हें ऐश्वर्य आदि में भी सम्मिलित रहना पड़ा, और शाही संरक्षकों का ऐसे सैन्य अभियानों में साथ किया जिनका उद्देश्य अधिकतर विजय के बाद लूट की दौलत प्राप्त करना होता था। परंतु इतने विभिन्न वर्गों के लोगों के साथ रहने के बावजूद वह एक धार्मिक व्यक्ति रहे और अपने पीर ख्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया के मुरीद या शिष्य बने रहे। शाही संरक्षण मिलने के कारण ख़ुसरो ने अपार धन संचित किया परंतु उन्होंने उसे या तो अपने परिवार पर, मित्रों पर, या अपने पीर के प्रति अनुराग प्रदर्शन में, या फिर गरीबों और जरूरतमंदों पर जो औलिया का ख़ानकाह में रहते थे, पर खर्च कर दिया। ख़ुसरो और औलिया की बड़ी संख्या में कहानियाँ प्रचलित हैं जो दोनों के पारस्परिक अनुराग और लगाव का वर्णन करती हैं। ख़ुसरो ने अपने गुरु के लिए गीत गाए और सूफी संतों की स्तुति में बड़ी संख्या में कविताएँ (मंकबात) लिखीं। अपने 'अफदल-उल-फवैद' में उन्होंने अपने आख्यान एकत्रित किए हैं।

इस प्रकार अमीर ख़ुसरो की अपनी कविताओं और संगीत द्वारा भारत में सूफीवाद फैलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उनके सूफी-संत औलिया के प्रति श्रद्धा को इस तथ्य से भी इंगित किया जा सकता है कि अपने गुरु की मृत्यु के उपरांत वे भी अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे और उसी वर्ष 1325 ई० में उनकी भी मृत्यु हो गई।

2.3.4 अमीर ख़ुसरो की हिंद-फ़ारसी साहित्य को नयी देन

ज़ियाउद्दीन बरनी ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'तारीख-ए-फ़िराजे शाही' में एक टिप्पणी की कि "सुल्तान अलाउद्दीन ख़लजी के शासन में ऐसे कवि विद्यमान थे जैसे न तो पहले कभी थे और न ही उसके बाद हुए हैं। अमीर ख़ुसरो अपनी विस्तृत रचनाओं और आदर्शों की नवीनता के लिए अतुलनीय हैं। जहाँ गद्य और पद्य के अन्य महान रचनाकार केवल एक या दो विधाओं में ही कुशल रहे हैं, वहीं अमीर ख़ुसरो साहित्य की सभी विधाओं में समान रूप से प्रभावशाली रहे हैं। ऐसा व्यक्ति जिसकी काव्य की

संपूर्ण विधाओं में इतनी कुशलता हो न कभी अतीत में हुआ है और भविष्य में 'कयामत के दिन' (The Day of Judgement) से पहले शायद ही हो।"

ख़ुसरो की रचनाओं के आधुनिक विद्वान आलोचकों में, शिबली नुमानी भी लिखते हैं कि, "भारत में ऐसी संपूर्ण योग्यता वाला व्यक्ति पिछले 600 वर्षों में कोई नहीं हुआ और इरान जैसे देश में जो ऐसी विभुतियों की जन्म-भूमि रहा है ने भी ऐसे केवल तीन या चार व्यक्तियों को ही जन्म दिया है।" ख़ुसरो के काल में फ़ारसी काव्यों की प्रसिद्ध विधाएँ - कसीदा, मसनवी, गज़ल और रुबाइयत थीं। फिरदौसी, सादी, अनवरी और हाफ़िज़ फ़ारसी काव्य की इन विधाओं के मशहूर कवि थे। परंतु उनकी काव्य प्रभुसत्ता केवल कुछ निश्चित सीमा तक ही थी। फिरदौसी ने मसनवी लेखन कला की सीमा को कभी नहीं लांघा और अपने आपको इसी विधा तक ही सीमित रखा। वहीं सादी ने कभी कसीदा नहीं लिखा। अनवरी की मसनवी और ग़ज़ल की तुलनात्मक रचना में कोई रुचि नहीं थी, तथा हाफिज़ ने स्वयं को केवल ग़ज़ल लेखन तक ही सीमित रखा। परंतु ख़ुसरो की प्रभुसत्ता, ग़ज़ल, मसनवी, कसीदा, रुबाइयत तथा अन्य काव्य विधाओं, जिनकी गणना करना कठिन है, में थी। आधुनिक और तत्कालीन समय के आलोचकों की इस प्रकार की टिप्पणियाँ इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं कि अमीर ख़ुसरो के लेखन में अनूठेपन और नवीनता के अंश विद्यमान थे।

ख़ुसरो ने काव्य लेखन की शुरुआत अपने गुरु निज़ामी की अति उत्तम रचनाओं को अपने समक्ष रखकर और उन्हें अपनी रचनाओं का आधार बनाकर की। यह उनकी रचना शिरीन-व-ख़ुसरो और मजनू-व-लैला से स्पष्ट होता है। शिरीन-व-ख़ुसरो में ख़ुसरो पुराने प्रेम प्रसंग को अपने गुरु निज़ामी की ही भाँति एक अत्यधिक कलात्मक अंदाज में प्रस्तुत करते हैं और कुछ स्थानों पर वह अपने गुरु की अपेक्षा एक महान नाटककार और पात्रों को प्रभावशाली ढंग से प्रकट करने वाले एक कुशल चित्रकार के रूप में स्वयं को सिद्ध करते हैं। मजनू-व-लैला सरल और सौम्य अंदाज में लिखी गई उनकी पहली खाम्स कविता है और इसमें ख़ुसरो ने स्वयं को किसी भी इरानी कवि की भांति प्रेम और भावनाओं की मानसिकता को समझने वाले महान विद्यार्थी के रूप में सिद्ध किया है। यद्यपि ख़ुसरो की प्रेम संबंधी मसनवियाँ (जिन्हें पंज गंज के नाम से भी जाना जाता है) निज़ामी की खाम्स पर अधिक आधारित हैं परंतु ख़ुसरो ने अपने पदों में कहानियाँ और घटनाओं को भी समाहित किया जिसे निज़ामी ने इस विचार से उपेक्षित कर दिया कि ये कलात्मकता व्यक्त करने में असमर्थ हैं।

13वीं शताब्दी में काव्य लेखन की शैली और कुछ प्रकरणों में विषय भी फ़ारसी साहित्य के लिए जाते थे। ख़ुसरो के अतिरिक्त भारतीय कवियों ने अपने गुरुओं की शैली को चुना और कभी-कभी उनकी नकल भी की। इस प्रकार कसीदा मसनवी और ग़ज़ल लेखन फ़ारसी काव्य से प्रेरित थे। हालांकि ख़ुसरो ने मसनवी और कसीदा परंपरागत शैली में लिखा, परंतु उन्होंने इसमें नवीन विषयों का चयन कर इसके प्रवर्तक भी बने। ख़ुसरो की विचारों और शैली में नवीनता के प्रति प्रेम और नकल के प्रति घृणा ने उन्हें उस पुरानी कला में नयी जान फूंकने के लिए प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप उनकी लेखनी में नवीनता और प्रभाव दोनों का समावेश हुआ। उनका यह प्रयास उनकी रचना 'किरान-उस-सादेन' में स्पष्ट है जो मसनवी शैली में लिखी पहली दीर्घ कविता थी। एम०डब्ल्यू० मिर्ज़ा के अनुसार उनकी मसनवी एक संपूर्ण चित्र का प्रभाव प्रस्तुत करती है। इसमें पात्रों का चित्रण अलग-अलग और स्वतंत्र रूप से किया गया और उन्हें यथोचित पृष्ठभूमि देकर इस प्रकार जोड़ दिया गया जैसा कलाकार दर्शाना चाहता था। मिर्ज़ा के अनुसार कविता का सबसे नवीन पहलू अबायात-ए-सिलसिला की शुरुआत है जिसका प्रयोग ख़ुसरो ने विभिन्न पाठों तथा ग़ज़लों के शीषर्क के लिए किया जो पाठ में विद्यमान भावनाओं को प्रदर्शित करती हैं

और इस प्रकार मसनवी की नीरसता को कम कर देती हैं। ये ग़ज़लें कवि की तत्कालीन भावनाओं को भी प्रकट करती हैं जो उसके हृदय में उस घटना के विवरण के समय जाग्रत हुईं। ख़ुसरो की लेखनी का एक अन्य नवीन पहलू उनका अपने पदों के लिए समकालीन विषयों का चुनाव था। इसका सबसे अच्छा उदाहरण उनकी ऐतिहासिक मसनवी ख़िज़्र ख़ान-व-देवल रानी में मिलता है। इसके सभी पात्र वास्तविक हैं जिन्हें कवि स्वयं व्यक्तिगत रूप से जानता था और उन सभी घटनाओं का साक्षी था जिनका वह वर्णन करता है। यह कहानी इतिहास के क्षेत्र की है, न कि पौराणिक, जो भूतपूर्व लेखकों का विषय हुआ करता था। इसके बावजूद इसमें पुरानी कहानियों की विशेषताएँ जैसे आकर्षण, प्रेम तथा असंगत प्रयोग विद्यमान हैं। परंपरागत लेखन शैली से इसकी भिन्नता एक अन्य तथ्य में यह है कि इसमें मानवीय विषय तथा वास्तविक मानवीय भावनाओं का वर्णन है न कि पारंपरिक पद्य लेखन शैली की बनावट का।

अमीर ख़ुसरो के लेखन की अन्य विशिष्टता उनका अपनी जन्मभूमि के प्रति लगाव और देशप्रेम का वर्णन है जिसके अंतर्गत वे अपनी जन्म-भूमि को अन्य देशों से न केवल प्राकृतिक संपदा में बल्कि संस्कृति और ज्ञान के क्षेत्र में भी श्रेष्ठ बताते हैं। आयाज़ अहमद के अनुसार यह नवीनीकरण फ़ारसी साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। ख़ुसरो की लेखन शैली का पहलू विशेष रूप से उनकी दोनों रचनाओं किरान-उस-सादेन और नुह सिपेहर में दिखता है ख़ुसरो की लेखन शैली का एक अन्य नवीन पहलू, जो कि पुनः नुह सिपेहर में परिलक्षित होता है, वह मसनवी के व्यवस्थित करने के तरीके का है जिसके अंतर्गत मसनवी को नौ भागों में विभाजित किया गया है और हर भाग का आरंभ एक पद्य से तथा अंत ग़ज़ल से किया गया है। कविताओं को विभिन्न काव्य-मापकों द्वारा अलग करने का नवीनीकरण एक बहुत ही अच्छा विचार था क्योंकि यह प्रयोग हर भाग को नवीनता और विशिष्टता प्रदान करता था। इसी प्रकार की नवीनता ख़ुसरो की ख़ज़ायन-उल-फ़ुतुह में भी दृष्टिगोचर होती है जहाँ हम देखते हैं कि व्याख्यान को विभिन्न माप के अनुच्छेदों में विभक्त किया गया है जिसका प्रत्येक अनुच्छेद अनुरुपता का है जो कि मुख्य रूप से तारे, आग, जल आदि से लिए गए हैं। इस शैली के प्रयोग ने अन्यथा नीरस व्याख्यानों को विविधता प्रदान की और इसे अनेक भागों में विभाजित किया जिसका प्रत्येक भाग एक विशेष विषय को समर्पित था। फ़ारसी पद्य लेखन की अन्य विधा जिसमें ख़ुसरो ने न केवल भूतपूर्व बल्कि अपने समकालीन कवियों को भी पीछे छोड़ दिया वह ग़ज़ल लेखन था। फ़ारसी काव्य क्षेत्र में ख़ुसरो भारत में फ़ारसी ग़ज़लों के जनक कहे जाते हैं जिस प्रकार सादी ईरान में फ़ारसी ग़ज़लों के जनक माने जाते हैं। यद्यपि ख़ुसरो ने अपनी ग़ज़लों में सादी की सरलता, मधुरता और सुशिष्टता का समागम किया, पर वे सादी की ग़ज़लों में कमियाँ देख सके और अपने लिए ऐसे गीतात्मक काव्य का विकास किया जिसे किसी भी फ़ारसी कवि ने नहीं किया था। ख़ुसरो की ग़ज़लों में अनोखापन इस तथ्य में निहित था कि वे एक कुशल संगीतकार थे और मधुर संगीत तथा इसके सामंजस्य को आसानी से समझ और ग्रहण कर लेते थे। इसके अतिरिक्त उनके शब्दों के चयन ने उनकी पद्य रचना को गति और सुगमता प्रदान की। इसके अतिरिक्त उनकी अधिकतर ग़ज़लें सरल पर शालीन अंदाज़ में लिखी गई थीं और उसमें तत्कालीन साधारण दैनिक बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया गया था। इसके अलावा, जहाँ भूतपूर्व फ़ारसी ग़ज़ल लेखकों जैसे सिनाई, रुमी और ईराकी की रचनाएँ सूफीवाद में डूबी हुई थीं वहीं ख़ुसरो की ग़ज़लें गीतात्मक थीं। इसका मुख्य कारण यह था कि उन्होंने अपने आपको विभिन्न दार्शनिक चिंतन से दूर रखा और कविता को विविध मानवीय भावनाएँ प्रकट करने का माध्यम बनाया। इस प्रकार फ़ारसी ग़ज़लों की अत्यधिक संजीदगी को अपनी साधारण भाषा शैली और वाक्पटुता से कम करके ख़ुसरो ने भारतीय और मध्य एशिया के दृष्टिकोणों का समागम करने का प्रयास किया।

मोहम्मद वाहिद मिर्ज़ा के विचारानुसार ख़ुसरो की कविताओं में एक विशेष उत्कृष्टता और विचारों की गहनता है जो अधिकतर फ़ारसी कवियों में नहीं थी। एक अन्य आधुनिक आलोचक मोहम्मद हबीब ने टिप्पणी की कि ख़ुसरो में पहली बार ग़ज़ल अपनी निरंतरता में उच्च शिखर पर पहुँची।

2.3.5 अमीर ख़ुसरो का हिंदी काव्य

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, ख़ुसरो ने अपने समकालीन लेखकों की अपेक्षा अपनी जन्मभूमि के आकर्षण और सौंदर्य की प्रशंसा में गौरव अनुभव किया और ऐसा करने में उन्होंने ऐसा ही जोश, उमंग और जन्मभूमि के प्रति सहज लगाव दिखाया जैसा भारतीय संस्कृत और हिंदी काव्यों में दिखता है। ख़ुसरो की प्रसिद्ध मसनवी ख़िज़्र ख़ान-व-देवल रानी पर टिप्पणी करते हुए एम०डब्ल्यू० मिर्ज़ा लिखते हैं- "पूरी कविता देशप्रेम में सराबोर है, जो कलाकार का देश के प्रति प्रेम है। यह केवड़ा, कारना, चंपा और सैकड़ों भारतीय फूलों और मसालों की खुशबू से सुगंधित है। साथ ही इसमें भारत में चमकने वाले सूर्य और पीली चांदनी की रोशनी की शीतलता है। कवि अपनी रचना में यहाँ-वहाँ भारतीय मूल के शब्दों का प्रयोग करता है जो फ़ारसी से अत्यंत सुंदरता से मिल जाते हैं और कविता को विशिष्टता तथा अनूठी सौम्यता प्रदान करते हैं।" उसी मसनवी में ख़ुसरो ने भारतीय सौंदर्य और कारीगरों की कायकुशलता को इस्लामिक देशों के सौंदर्य और कारीगरों से उत्तम बताया है। नुह सिपेहर में ख़ुसरो अपनी दलीलों द्वारा यह कहते हैं कि भारत एक स्वर्ग है और किसी भी देश की जलवायु और प्राकृतिक संपदा में उत्तम है। वे कहते हैं कि विज्ञान और बौद्धिकता में भारत का कोई सानी नहीं है तथा यहाँ दर्शन की विभिन्न शाखाएँ विद्यमान हैं। इसके साथ-साथ यहाँ लोग भौतिकी, गणित तथा खगोलशास्त्र तथा अन्य भौतिकी विज्ञान से अच्छी तरह वाकिफ़ हैं। ख़ुसरो की इस ज़मीन के प्रति देशभक्ति ने उन्हें हिंदी (जो हिंदवी के नाम से लोकप्रिय है) जो साधारण वर्ग की भाषा थी को भी उपेक्षित नहीं होने दिया, जबकि उन्होंने अधिकतर फ़ारसी में लिखा जो क्लासिक भाषा थी।

अमीर ख़ुसरो की हिंदी कविताओं की रचना पर विद्वानों में विवाद है जिसका आधार यह माना जाता है कि ख़ुसरो ने कभी भी अपने हिंदी पदों का संकलन नहीं किया और न ही उनकी मृत्यु के तुरंत बाद ही उसका संकलन किया गया। साथ ही साथ जिन कविताओं ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया उनका संप्रेषण मौखिक रूप से या आने-वाली पीढ़ी के द्वारा स्वयं किए गए संकलन से हुआ। परंतु ख़ुसरो के स्वयं के लेखन से यह स्पष्ट है कि उन्होंने न केवल हिंदवी में विस्तारपूर्वक लिखा बल्कि अपने हिंदी के ज्ञान पर गर्व भी किया। इसके अतिरिक्त उनकी हिंदी रचनाएँ अनेक समकालीन घटनाओं, तौर-तरीकों, परंपरा तथा यहाँ तक कि उस काल में प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं का भी उल्लेख करती हैं। इसके अतिरिक्त जैसा आयाज़ अहमद ने बताया है, ख़ुसरो ने अपने पीर निज़ामुद्दीन औलिया की 1325 में मृत्यु पर अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए हिंदी दोहे को चुना। युसुफ हुसैन लिखते हैं कि तकी ओहादी, जो सत्रहवीं सदी के विद्वान थे तथा 1606 ई० में जहाँगीर के दरबार में गए थे, वे भी ख़ुसरो की हिंदी कविताओं की बात करते हैं। उर्दू के प्रसिद्ध शायर मीर तकी मीर उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में इसकी पुष्टि करते हैं कि उनके काल तक ख़ुसरो के हिंदी गीत दिल्ली में लोकप्रिय थे। इन सभी साक्ष्यों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उन्होंने अवश्य ही हिंदी में कविताएँ लिखीं, हालांकि जैसा ख़ुसरो ने स्वयं स्वीकारा है उन्होंने इसे बहुत अधिक महत्वता नहीं दी और अपनी हिंदी रचनाओं को अनेक पुर्जों में लिखकर अपने मित्रों में बाँट दिया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि हिंदवी उस काल की लोक भाषा थी तथा उसे अभी भी कवि भावनाओं को व्यक्त करने के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप

में विकसित होना था। अतः स्वाभाविकतः हिंदवी क्लासिक साहित्य की भाषा नहीं स्वीकारी जा सकती थी जिसमें ख़ुसरो लिखना चाहते थे। यद्यपि अमीर ख़ुसरो ने हिंदी कविता को कभी अहमियत नहीं दी और इसे समय व्यतीत करने का माध्यम समझा, परंतु फिर भी उनकी बोल-चाल की हिंदुस्तानी भाषा पर अधिकार प्रशंसनीय था। एक विद्वान ने यह कहा है कि जहाँ ख़ुसरो की फ़ारसी रचनाएँ उन्हें विशिष्ट वर्ग की श्रेणी में स्थापित करती हैं वहीं उनकी हिंदी कविताएँ जो उनके देश प्रेम को स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करती हैं उन्हें तूती-ए-हिंद (भारत की तूती, तूती इरान की एक गानेवाली चिड़िया है) के रूप में ख्याति अर्जित करवाने में महत्त्वपूर्ण रहीं। यह ख़ुसरो की लोकप्रियता को भी परिलक्षित करती हैं जो उन्हें सरल हिंदी कविताओं की रचना से प्राप्त हुई जिसमें उन्होंने भारतीय जनसाधारण से संबंधित विषयों को आधार बनाया। ख़ुसरो के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण था नवीनता और एम०डब्ल्यू० मिर्ज़ा के शब्दों में वे हमेशा कुछ नया करना चाहते थे और जहाँ तक संभव हो परंपरा और रूढ़िवादिता के बंधनों को तोड़ देना चाहते थे तथा ऐसे मार्गों पर चलना चाहते थे जिस पर किसी मनुष्य के कदम न पड़े हों। इसी कारण यह आसानी से समझा जा सकता है कि उनकी इस नवीनीकरण की प्रवृत्ति ने उन्हें हिंदी पदों को नयी शैली में लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इस संदर्भ में उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि, एक ऐसा तथ्य जिसे हिंदी साहित्य के सभी साहित्यकारों ने स्वीकारा है, वह यह था कि वे पहले कवि थे जिन्होंने सरल और हिंदी के लोकप्रिय रूप खड़ी बोली का प्रयोग किया और इस प्रकार हिंदुस्तानी का, जो कालांतर में दो शाखाओं खड़ी बोली और उर्दू मे विभाजित हो गई काव्यात्मक रूप में प्रयोग करने वाले पहले विशिष्ट व्यक्ति बने।

अमीर ख़ुसरो के हिंदी पदों में दोहा, पहेली, मुकरनी (दो अर्थों वाले पद), दो-सुख़ाने (दो अर्थों वाले उत्तर), गीत (लघुगीत), गज़ल जिसमें एक वाक्य फ़ारसी और दूसरा हिंदी की (चौपाइयाँ) और एक छोटी फ़ारसी-हिंदी शब्दकोष है, जो 'ख़लिक-बरी' के नाम से जाना जाता है, शामिल हैं। उनका हिंदी काव्य में योगदान उच्च दार्शनिक और अलौकिक संबंधी पदों से लेकर संगीतज्ञों के लिए अत्यंत मादक गीतों की रचनाओं तक है। उनकी पहेलियाँ उन्हें जनसाधारण के कवि के रूप में एक ऐसे भारतीय के रूप में प्रस्तुत करती हैं जिसने भारतीय जीवन और संस्कृति को बहुत करीब से देखा था। कबीर, दादु, और रैदास तथा हिंदी के प्रारंभिक संतों की भाँति, अमीर ख़ुसरो ने हिंदी कविताओं में मिश्रित भाषा का प्रयोग किया क्योंकि वे विभिन्न प्रकार के शब्दों का, चाहे उनका स्रोत कुछ भी हो, प्रयोग करने से नहीं हिचकिचाते थे। हमें उनकी हिंदी रचनाओं में न केवल फ़ारसी शब्दों और खड़ी बोली हिंदी का समन्वय मिलता है अपितु ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, कन्नौजी, राजस्थानी और पुरबी आदि जो कि उस काल की क्षेत्रीय बोलियाँ थीं उनके भी अंश प्राप्त होते हैं। इसके साथ-साथ उन्होंने हिंदी को प्राकृत और अपभ्रंश के प्रभाव से भी मुक्त करने का प्रयत्न किया और हिंदी को सच्चे अर्थों में देशभाषा बनने में सहायता दी।

अमीर ख़ुसरो के हिंदी काव्यों में विविधता और विषयों के चुनाव ने आलोचकों को आश्चर्यचकित किया है। वे बच्चों की पहेलियों में भी उतने ही सहज नज़र आते हैं जितना वे अलौकिक प्रकरण के वर्णन में। उनका प्राकृतिक संपदा, भौगोलिक स्थिति तथा स्थानों के नाम के प्रति लगाव उन्हें एक हिंदी लेखक के रूप में विविधता प्रदान करता है। उनके विषयों में कुँए पर एकत्रित हुई गाँव की स्त्रियाँ, प्रेमियों की विरह-वेदना, यात्री की चिंता और अकेलापन, ईश्वर के चमत्कार, ब्रह्मांड की शक्तियाँ तथा अन्य कई विषय शामिल हैं। यह इस तथ्य की पुष्टि करता है कि ख़ुसरो ने मुख्य रूप से भारतीय जीवन से संबंधित साधारण विषयों में रचना की। उनके पदों की विविधता उनकी रचनाओं को और रोचक बनाती है। कुछ हिंदी शब्दों के प्रयोग ने, यद्यपि उनका प्रयोग बहुत सीमित है, ख़ुसरो के फ़ारसी पदों को

अनूठी शान और सुंदरता प्रदान की है। इस कारण खुसरों ने इन शब्दों का फ़ारसी रचनाओं में प्रयोग उचित ठहराया है। आधुनिक आलोचकों का मत है कि खुसरो उतने ही एक महान क्लासिकल कवि थे जितने वे साधारण वर्ग के संगीतज्ञ के रूप में लोकप्रिय थे, और उनकी इसी विशेषता ने उन्हें तुती-ए-हिंद की उपाधि अर्जित करवाई।

2.3.6 उपसंहार

अमीर खुसरो साहित्य के विद्वान थे जिन्होंने हिंद-फ़ारसी और हिंदी साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी विभिन्न साहित्यिक विधाओं की रचनाएँ जीवन के विभिन्न पहलुओं जिसका विस्तार प्रेम-प्रसंग से दर्शन तक है को परिलक्षित करती हैं। उनके दर्शन, जो उनके खगोलशास्त्र, ज्योतिष, भूगोल, प्राकृतिक वनस्पति के ज्ञान पर आधारित हैं, भी प्रशंसनीय हैं।

अभ्यास-3

(अ) निम्नलिखित का सही मेल कीजिए-

(i)	हल	(अ)	रितुसंहार
(ii)	अमीर खुसरो	(ब)	तारीख-ए- फिरोजशाही
(iii)	कालिदास	(स)	बृहतकथा
(iv)	ज़ियाउद्दीन	(ड)	मिफताह-उल-फुतुह
(v)	गुनाध्या	(च)	गाथासतसई

(ब) निम्न के लिए 'सही' या 'गलत' बताईये-

(i) तारीख-ए-अलाई अलाउद्दीन खिलजी पर लिखी गई रचना है।

(ii) अमीर खुसरो ने मुकरनी भी लिखीं

(iii) अमीर सैफुद्दीन महमूद अमीर खुसरो के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे।

(iv) मसनवी एक प्रकार का दीर्घ काव्य है।

(v) अपने काव्य और संगीत से अमीर खुसरो ने भारत में सूफी संस्कृति के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(स) संक्षिप्त टिप्पणी:

1. अमीर खुसरो
2. नुह सिपेहर

(ड) दीर्घ प्रश्न

1. अमीर खुसरो से पूर्व मध्यकालीन भारत में हिंद-फ़ारसी साहित्य के उत्कर्ष में सहायक होने वाले कारकों का विश्लेषण कीजिए।
2. अमीर खुसरो के काल के इतिहास को समझने के लिए उनकी रचनाओं की महत्वत्ता का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
3. हिंदी साहित्य के विकास में अमीर खुसरो के योगदान का उल्लेख कीजिए जिसके कारण उन्हें तूती-ए-हिंदी की उपाधि दी गई।

संदर्भ सूची

1. मोहम्मद हबीब, 'हज़रत अमीर ख़ुसरो ऑफ देहली', दिल्ली, 2004 (पुनर्मुद्रण)
2. मोहम्मद वारिस मिर्ज़ा 'द लाइफ एंड वर्क्स ऑफ अमीर ख़ुसरो', दिल्ली, 1974 (पुनर्मुद्रण)
3. जो अंसारी (संपादित), 'लाइफ, टाइम्स एंड वर्क्स आफॅ अमीर ख़ुसरो देहलवी', नेशनल अमीर ख़ुसरो सोसाइटी, दिल्ली, 1977
4. मुज़फ्फर आलम, 'द लैंगुऐजज़ ऑफ पॉलिटिकल इस्लाम इन इंडिया' 1200-1800, नई दिल्ली, 2004
5. युसुफ हुसैन, 'ग्लिमपसस् ऑफ मीडियवल इंडियन कल्चर', बॉम्बे, 1962
6. शेलडन पोलॉक (संपादित), 'लिटरेरी कल्चरस इन हिस्ट्री : रीकंस्ट्रक्शनस फ्रॉम साऊथ एशिया', बर्कले, 2003
7. आयाज़ अहमद, 'अमीर ख़ुसरो - द तूती-ए-हिंद', इडो-इरानिका में उपलब्ध, खंड 24, अंक 1 और 2, 1971, पृ० 82-95
8. एस.एस.ए. रहमान, "अमीर ख़ुसरो ऐज़ ए जीनियस", इंडो-इरानिका में उपलब्ध, खंड 30, अंक 1 और 2 1977, पृ० 1-20
9. सिसिर कुमार दास, 'ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर (500-1399) : फ्रॉम कोर्टली टू द पॉपुलर', साहित्य अकादमी, 2005

2.4 उर्दू काव्य और गद्य : मिर्ज़ा ग़ालिब

2.4.1 भूमिका

इस अध्याय में उर्दू भाषा और साहित्य के उद्भव के इतिहास को विशेषत: मिर्जा ग़ालिब के योगदान के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। ग़ालिब ने उर्दू काव्य और गद्य को कई नवीनताएँ दीं। साधारणत: उर्दू का उद्भव भारत में मुस्लिम के, विशेष रूप से तुर्कों के, आगमन से देखा जाता है। जहाँ तुर्की सेना बोलचाल के लिए फ़ारसी भाषा का प्रयोग करती थी वहीं शहर के लोग खड़ी बोली का प्रयोग करते थे।

2.4.2 उर्दू भाषा का इतिहास

उर्दू हिंद-यूरोपीय भाषा-परिवार की भाषा है और भारत में इसकी उत्पत्ति मुस्लिम के आने से देखी जाती है। 'उर्दू' शब्द की उत्पत्ति तुर्की भाषा से हुई है और इसका शाब्दिक अर्थ 'सेना', 'छावनी' या 'समूह' है। मोहम्मद गौरी (1193 ईस्वी के बाद का काल) के काल से दिल्ली में रहने वाली तुर्की सेना को 'उर्दू- ए-मुआला' कहा जाता था जिसका अर्थ प्रतिष्ठित सेना था। साधारणत: ऐसा विश्वास है कि जहाँ यह सेना फ़ारसी का प्रयोग करती थी वहीं शहरी लोग हिंदी के आरंभिक रूप 'खड़ी बोली' का प्रयोग करते थे। एक विदेशी सेना के स्थानीय लोगों से संपर्क ने स्थानीय और विदेशी भाषा के मेल को प्रोत्साहन दिया जो साधारणत: इन विदेशी सैन्य छावनियों में बोली जाती थी। परन्तु मेल और संपर्क की यह प्रक्रिया केवल सैनिक छावनियों तक ही सीमित नहीं रही बल्कि इसका विस्तार अधिक विस्तृत सांस्कृतिक स्तर पर भी हुआ जिसके अंतर्गत स्थानीय लोगों का संपर्क मुस्लिम व्यापारियों, यात्रियों, सूफी संतों तथा अन्य अप्रवासियों से बढ़ा। इस संपर्क ने उर्दू को एक सामान्य भाषा के रूप मे विकसित किया जिसका अपना अलग चरित्र था।

हालांकि उर्दू का उद्‌भव दिल्ली से माना जाता है। परन्तु टी० ग्राहम बेली (ज्ग ळतींउम ठंपसमल) जैसे विद्वान यह रेखांकित करते हैं कि प्रारंभिक तुर्की सेनाएँ सर्वप्रथम पंजाब और लाहौर में आई और स्थापित हुईं तथा स्थानीय लोगों से वैवाहिक संबंध बनाये। अत: इस सांस्कृतिक संश्लेषण के कारण कालांतर में इन विदेशी लोगों ने भी अवश्य ही ऐसी भाषा का प्रयोग आरंभ कर दिया जो विदेशी और स्थानीय भाषाओं का मिश्रित रूप था। इस प्रकार आरंभिक उर्दू का आधार प्राचीन पंजाबी थी जो 'खड़ी बोली' से बहुत अधिक भिन्न नहीं थी। 'खड़ी बोली' और उर्दू में बहुत सीमित अंतर हैं तथा मुख्य अंतर यह है कि जहाँ 'खड़ी बोली' में अत्यन्त कम वहीं उर्दू में फ़ारसी और अरबी भाषा के अधिक शब्दों का प्रयोग होता है। उत्तर भारत में 'उर्दू' इस सामान्य भाषा के लिए प्रयोग होने लगा ताकि इसे 'खड़ी बोली' और फ़ारसी से अलग किया जा सके। यहाँ इसे 'ज़बान-ए-उर्दू', सेना की भाषा, या 'ज़बान-ए-उर्दू-ए -मुआला' प्रतिष्ठित सेना की भाषा कहा गया। समय के साथ-साथ 'ज़बान' शब्द का प्रयोग खत्म हो गया और यह केवल उर्दू शब्द से ही जानी जाने लगी।

उत्तर भारत के अतिरिक्त उर्दू भाषा के आरंभिक और बाद के समय के विकास के संदर्भ में दक्कन का क्षेत्र महत्त्वपूर्ण है। दक्कन में उर्दू के प्रारंभिक विकास से संबंधित बहुत कम महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ उपलब्ध हैं। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण घटना सुल्तान अलाउद्दीन ख़लजी (1296-1320) का विजय अभियान है जिसके अंतर्गत दक्कन के कुछ क्षेत्रों में सेनाध्यक्ष मलिक काफूर के नेतृत्व में सैन्य अभियान किये गए। इसके अतिरिक्त अन्य महत्वपूण ऐतिहासिक घटना सुल्तान मोहम्मद बिन तुगलक का दक्कन अभियान और राजधानी का दिल्ली से दौलताबाद 1326-1327 ईस्वी में स्थानांतरण था। ये ऐतिहासिक घटनाएँ उर्दू के दक्कन में तुर्की सेना, बुद्धिजीवी, सूफी संत, व्यापारी आदि द्वारा प्रचार में सहायक रहीं। परन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना 14वीं शताब्दी के मध्य में दिल्ली सल्तनत के विरोध में दक्कन में स्वतंत्र बहमनी राज्य की स्थापना थी। बहमनी राज्य के शासकों ने, हालांकि वे मुस्लिम थे, उत्तर भारत की कई परम्पराओं को छोड़ दिया और अपनी संस्कृति को ही विकसित करने का प्रयास किया। इस प्रकार अपने फ़ारसी से प्रबल संपर्क के बावजूद, जो भारत के मुस्लिम की सांस्कृतिक भाषा थी, बहमनी शासकों ने फ़ारसी की अपेक्षा अपनी ही भाषा का विकास किया। इस प्रकार उन्होंने उर्दू भाषा अपनाई जिस पर स्थानीय भाषाओं विशेषत: गुजराती और मराठी का प्रभाव था। कालांतर में बहमनी शासकों ने उर्दू को लगभग पूरे दक्कन में फैलाया। परन्तु यह भाषा दक्कन में उर्दू नाम से नहीं जानी गई बल्कि इसे 'दक्खिनी' या 'दक्कनी' कहा गया। इस प्रकार उर्दू बोली के दो भिन्न रूप हैं-

1. दक्खिनी (दक्कन में बोली जाने वाली) और
2. उत्तरी उर्दू (उत्तर भारत की उर्दू जिसका उद्‌भव दिल्ली से हुआ)।

उर्दू भाषा की एक अनुपम उत्कृष्टता विभिन्न प्रकार के और विभिन्न भाषाओं के शब्दों को समाहित करने की योग्यता थी जिससे इसका शब्दकोष और विचारों की शाब्दिक अभिव्यक्ति समृद्ध हुई। इसके अतिरिक्त उर्दू ने कई भारतीय भाषाओं से ऐतिहासिक घटनाओं, मिथक कथा एवं प्रतीक तथा साथ ही काव्य और गद्य शैली को ग्रहण किया। इन सभी तत्त्वों के सम्मिश्रण ने उर्दू भाषा को एक वास्तविक भारतीय आधार प्रदान किया। इस प्रकार एक भाषा जो आरंभ में 'हिंदवी', 'हिंदी', 'गुजरी', 'दखिनी' आदि तथा बाद में 'रेख़ता' 'उर्दू', 'उर्दू-ए-मुआला' या 'हिन्दुस्तानी' कही जाती थी भारतीय उपमहाद्वीप की बोलियों की एक सर्वव्यापी भाषा बन गई।

भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक के भाषा विकास की प्रक्रिया में क्षेत्रीय अंशों एवं तत्त्वों को समाहित करने के उपरांत उर्दू ने लिपि विकास द्वारा जिसमें अरबी और फ़ारसी लिपियों की विशिष्टताएँ थीं स्वयं की पहचान स्थापित की।

2.4.3 उर्दू साहित्य का दक्कन में विकास

उत्तर भारत में उर्दू भाषा के एक विशिष्ट जानी-मानी बोली के रूप में आविर्भाव और इसके एक साहित्यिक भाषा के स्तर तक के विकास में लगभग दो शताब्दियों का अंतर है। इस प्रक्रिया के काल में संपूर्ण भारत में फ़ारसी साहित्यिक भाषा बनी रही। यह मुगलों के पतन का काल ही था जब उर्दू, जो अब तक नियंत्रित भाषा-रूप में ही विकसित थी, ने साहित्यिक भाषा के क्षेत्र में प्रगति की।

परन्तु इस प्रक्रिया को प्रथम प्रेरणा दक्षिण से प्राप्त हुई जहाँ उर्दू लगभग डेढ़ सौ वर्षों से (1590-1730 ई०) एक समृद्धशील साहित्यिक भाषा रूप में स्थापित थी। हालांकि उर्दू साहित्य के विकास में बहमनी राज्यों का योगदान लगभग नगण्य माना जाता है, फिर भी इसने उर्दू को एक अलग पहचान दी। परन्तु यह बीजापुर के आदिलशाही शासकों (1490-1986 ई०), गोलकुंडा के कुतुबशाही शासकों (1512-1687 ई०) और अहमदनगर के निजामशाही शासकों (1496-1633 ई०) के स्वतंत्र शासन में 'दखिनी उर्दू' वास्तविक अर्थ में एक साहित्यिक माध्यम के रूप में फली-फूली।

इन राज्यों के सुल्तान कला और संस्कृति के महान संरक्षक थे और कुछ तो स्वयं ही महान विद्वान थे। उनकी उदारवादिता ने दूर-दराज से कई साहित्यिक प्रतिभाओं को आकर्षित किया। हालांकि इन राज्यों की दरबारी भाषा 'दक्खिनी' या 'दखिनी' थी परन्तु इसका प्रतिमान फ़ारसी साहित्य था। फिर भी, 'दखिनी' ने स्थानीय स्वरूप को बरकरार रखा जिसमें इसका स्थानीय सांस्कृतिक वातावरण से संपर्क तथा गुजराती और मराठी क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव का प्रमुख योगदान रहा। इस्लाम की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के प्रयास ने भी क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग पर बल दिया और कई सूफी संतों ने, जिन्होंने दक्कन के सांस्कृतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, 'दखिनी' में रचनाएँ लिखीं।

दक्कन में उर्दू साहित्य के विकास का एक अन्य महत्त्वपूर्ण चरण औंरगजेब के दक्कन के गर्वनर के रूप में शासन काल में आरंभ हुआ जब उत्तर के लोगों का दक्षिण की ओर बड़ी संख्या में पलायन हुआ। इसके फलस्वरूप दक्षिण के शहर उत्तर भारत के और अधिक सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रभाव क्षेत्र में आये। मुगल प्रभाव के कारण उर्दू (औरंगाबादी) दक्षिण भारत के उन क्षेत्रों में और भी दृढ़ता से स्थापित हुई जो उत्तरी भारत से लंबी अवधि से और अधिक आत्मीयता से जुड़े थे। इस प्रकार दक्कन में दो भाषाएँ प्रचलित थीं, बाह्य प्रांतों की भाषा जहाँ मुगल प्रभाव नहीं पहुँच सका था जिसे 'दखिनी' कहा गया, और 'औरंगाबादी', (जिसे 17वीं शताब्दी में हिंदी कहा गया) जो औरंगाबाद के आसपास के क्षेत्रों में बोली जाती थी तथा जो एक लंबी अवधि से उत्तर भारत की भाषाओं के प्रत्यक्ष संपर्क में थी। उत्तर और दक्षिण भारत के भाषायी और साहित्यिक रूपों के मेल से उर्दू भाषा और साहित्य में एक नये स्तर का विकास हुआ जिसे 'रेख़ता' कहा गया। दक्कन के प्रसिद्ध 'रेख़ता' कवियों में शम्सउद्दीन वली उल्लाह (1667-1741) थे जो 'वली दक्किनी' के नाम से भी लोकप्रिय थे।

2.4.4 दिल्ली में उर्दू साहित्य का आविर्भाव

कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि उत्तर भारत में दिल्ली केन्द्र से उर्दू काव्य का विकास, जो क्लासिकल स्तर तक पहुँच गया, वह 'वली दक्किनी' से संबद्ध था। यह तर्क दिया जाता है कि 1700

ईस्वी में उनके दिल्ली आगमन से तथा 1727 ईस्वी में उनके 'दीवान' (कविताएँ) के प्रकाशन ने दिल्ली साहित्यिक समाज में एक सनसनी उत्पन्न की जिसका साहित्यिक माध्यम के रूप में उर्दू और फ़ारसी दोनों पर ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। मोहम्मद सादिक रेखांकित करते हैं कि वली और उनके 'दीवान' ने न केवल दिल्लीवासियों में फ़ारसी के प्रति विद्वेष को स्थापित होने में सहायता दी बल्कि इसने उन्हें उनकी भाषा (उर्दू) की योग्यताओं को भी प्रदर्शित किया। ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि वली ने साहित्यिक और आध्यात्मिक विभुति जैसे शाह गुलशन के संपर्क में आने के उपरांत 'दखिनी' को त्यागकर दिल्ली की बोली 'उर्दू-ए-मुआला' को अपनाया। इस प्रकार उन्होंने फ़ारसी गज़लों के लक्षणों को भी अपनी शैली में समाहित किया। वली को न केवल दक्कन में उर्दू गज़ल का प्रर्वतक माना जाता है बल्कि उनके प्रभाव को उत्तर में भी महसूस किया गया। फिर भी आलोचक यह तर्क देते हैं कि वली दक्कनी के उत्तर भारत में उर्दू के उद्भव पर प्रभाव को सावधानी से समझा जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि आरंभ में उर्दू शाही सेना की भाषा थी और दिल्ली में सदैव एक विशाल सेना स्थापित थी।

इसके साथ-साथ आधुनिक विद्वानों का यह भी मत है कि 14वीं शताब्दी से उर्दू 'दिल्ली गायकों' जिन्हें 'कव्वाल' के नाम से जाना जाता था कि लोकप्रिय संगीत भाषा बन गई थी। दिल्ली में उर्दू साहित्य के विकास को 18वीं शताब्दी में उत्तरी भारत में हुए राजनीतिक विकास के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि 18वीं शताब्दी की राजनीतिक गतिविधियों ने उर्दू के संरक्षकों के ढांचे को प्रभावित किया जिस पर मध्यकालीन भारतीय कला और साहित्य अधिकतर निर्भर थी। 18वीं शताब्दी के पूर्वाध में मुगल शासन को नादिरशाह के आक्रमण, सिख, अफगान, मराठा और ब्रिटिश शक्तियों ने चुनौती पेश की। युद्धों ने न केवल दिल्ली और इसके आस-पास के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की संख्या में कमी की बल्कि इसने असुरक्षा का वातावरण भी उत्पन्न किया। साथ ही मुगल दरबार इस काल में कुलीनों के विभिन्न गुटों के मध्य संघर्ष का स्थान बन गया जो अपने-अपने हितों की पूर्ति में लगे हुए थे। इस काल में कुलीनों के समूह से सत्ता और संसाधनों के नये दावेदार कुलीनों का आविर्भाव हुआ। ऐसी परिवर्तित सामाजिक-राजनैतिक स्थिति में जब दरबार और कुलीन वर्ग पतनोन्मुख था, नये संरक्षकों की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण थी। ऐसी स्थिति में कवियों को नये राजनीतिक प्रणेताओं में से संरक्षकों को तलाश करना पड़ा और ऐसी भाषा में काव्य रचना करनी पड़ी जो शाही छावनियों और दिल्ली के आसपास के क्षेत्र में बोली जाती थी।

उर्दू के पक्ष में आंदोलन में तीव्रता फ़ारसी विद्वानों के देशी कवियों और विद्वानों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार के कारण भी आई। परन्तु इसमें उल्लेखनीय तथ्य यह है कि फ़ारसी मुगल शासकों के प्रभुत्व से संबद्ध थी और मुगलों की शक्ति के ह्रास ने उर्दू के समर्थन में क्रांतिकारी प्रवृत्तियों का मार्ग प्रशस्त किया। ज्योंहि दिल्ली के कवियों को अपनी मातृ-भाषा में लेखन की संभावना का अहसास हुआ और उर्दू ने एक साहित्यिक माध्यम के रूप में जड़ें जमाईं, अन्य भाषाओं जैसे ब्रज भाषा और फ़ारसी के स्तर में गिरावट आई। शीघ्र ही उर्दू अपने क्लासिकल अवस्था में प्रवेश कर गई जहाँ यह 1857 के विद्रोह तक निरंतर विकासशील रही। इस चरण में फ़ारसी भी विद्वतापूर्ण तथा गंभीर रचनाओं में प्रयुक्त की जाती रही जिसमें अभिजातवाद और परिष्कृतता व्यक्त की जाती रही। यहाँ तक कि कवियों के जीवन वृतांत (तज़किरा) भी प्रवीण कवियों द्वारा फ़ारसी में लिखे गए।

2.4.5 ग़ालिब से पूर्व दिल्ली में उर्दू साहित्य का विकास

प्रारंभिक 18वीं शताब्दी संक्रमण का काल थी। मुगल साम्राज्य का वैभव, इसका अभिजात-तंत्र, और स्थापित कुलीन वर्ग पतनोन्मुख थे। परन्तु मुगल साम्राज्य के पतन के बावजूद समाज में एक नये और संपन्न वर्ग का आविर्भाव हुआ जिनकी इस संपन्नता का स्रोत दिल्ली और इसके आसपास के क्षेत्रों में बढ़ता व्यापार था। उन्होंने कुलीन वर्ग के लोगों के तौर-तरीकों को अपनाया और समकालीन फ़ारसी कवियों ने उन्हें 'रज़िल' (नवोदित जन) शब्द से संबंधित किया। उर्दू कवियों के नये वर्ग ने अपने आपको इस नये संपन्न वर्ग से जोड़ा जिन्होंने न केवल नये विकसित होते साहित्यिक माध्यम को संरक्षण प्रदान किया, बल्कि उन्होंने एक विशेष सांस्कृतिक वातावरण स्थापित करने में भी सहायता दी।

दिल्ली के प्रारंभिक महान उर्दू कवियों में सिराजुद्दीन अली ख़ान आरज़ू (1689-1756) थे। आरज़ू ने न केवल उर्दू को लोकप्रिय बनाने के लिए अपने शिष्यों जैसे दर्द और अन्यों को फ़ारसी की अपेक्षा उर्दू में लिखने के लिए प्रेरित किया बल्कि अन्य लोगों की ही भांति उर्दू को समृद्ध और परिशुद्ध करने के लिए फ़ारसी शब्द-कोश, भावों और प्रतिमावली का उर्दू में प्रयोग किया।

बाद में, उनके शिष्यों जैसे मीर, सौदा और दर्द ने आरज़ू के इस प्रयास को आगे बढ़ाया। इस प्रकार, उर्दू के समर्थन में आंदोलन मुख्य रूप से भारतीय मुस्लिम विद्वानों ने चलाया जो फ़ारसी संस्कृति, भाषा, और साहित्य से ओत-प्रोत थे। उनके उर्दू समर्थन से उर्दू काव्य में फ़ारसी से व्यापक पैमाने पर शब्द आदि लिए गए। आरज़ू के प्रसिद्ध समकालीन कवियों में शरफुद्दीन मज़मून (1689-1745) और जहुरुद्दीन हातिम (1718-1739) थे। हातिम मुगल बादशाह मोहम्मद शाह के काल के, जो कला और साहित्य के महान संरक्षक थे और जिनके शासनकाल में बड़ी संख्या में कवियों ने दिल्ली में आश्रय लिया, एक अग्रणी कवि थे।

इस तथ्य के बावजूद की प्रारंभिक उर्दू काव्य फ़ारसी गद्य से अत्यधिक प्रेरित थे, दिल्ली के इन उर्दू कवियों ने दिल्ली और इसके आसपास की बोलियों के शब्दों को अपनाया तथा तत्कालीन प्रचलित शैली में लेखन किया। इस प्रक्रिया को उन्होंने फ़ारसी और अरबी शब्दों के निर्धारित प्रयोगों, वर्तनी और उच्चारण संबंधी नियमों से भी स्वतंत्र रखा।

मिर्ज़ा ग़ालिब के साहित्यिक पटल पर पदार्पण से पूर्व दिल्ली में उर्दू साहित्य के बाद के चरण के प्रमुख लेखक मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जाना (1700-1718), मीर तकी मीर (1720-1810) मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ी सौदा (1713-1780 ई०) और मीर दर्द (1719-1785) थे। उर्दू के ये 'चार स्तम्भ' न केवल उर्दू भाषा को समृद्ध और परिष्कृत बनाने के लिए जाने जाते हैं बल्कि इन्होंने इसमें 'गज़ल' को भी प्रस्तुत किया जो कालांतर में उर्दू काव्य की सबसे लोकप्रिय विधा बन गई। मज़हर पहले ऐसे कवि थे जिन्होने फ़ारसी प्रतिमानों पर उर्दू काव्य लिखा। सौदा एक बहुमुखी प्रतिभा के लेखक थे जिन्होंने उर्दू में कई काव्य रूपों को प्रस्तुत किया जैसे 'कसीदा' (सम्बोध-गीत)। साथ ही उन्होंने अपने काल की गतिविधियों को व्यंग्यात्मक रूप में भी प्रस्तुत किया।

मीर ने उर्दू का प्रयोग नादिरशाह के दिल्ली पर आक्रमण और लूट के बाद के दिल्ली के जीवन पर प्रकाश डालने के लिए किया। सौदा के उत्तम व्यंग्य और मीर के प्रेम काव्यों में व्यक्त करुणता और सजीव चित्रण ने पहली बार उर्दू की असीम साहित्यिक संभावना को प्रदर्शित किया। दर्द एक प्रसिद्ध 'गज़ल' लेखक और उर्दू के शुद्धीकरण आंदोलन के एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्त्व थे। 18वीं शताब्दी के अंत

तक आते-आते इन उर्दू कवियों के प्रयासों ने उर्दू को साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में सशक्तता और विश्वसनीयता दिलायी।

ग़ालिब के एक आधुनिक जीवनी-लेखक, पवन के० वर्मा, के विचारानुसार उर्दू के इस विकास ने जो सूफी 'तरीका' (तौर-तरीके, शिष्टाचार) के सामाजिक स्वीकरण के और इस्लामिक रूढ़िवादिता के कमज़ोर होने के साथ-साथ चला ने उर्दू को फ़ारसी को विस्थापित करने के लिए जो मुगल दरबार की प्रचलित भाषा थी एक समुचित बौद्धिक वातावरण तैयार किया।

2.4.6 मिर्ज़ा ग़ालिब और उनका युग

जिस काल में मिर्ज़ा ग़ालिब का जन्म हुआ (1797) उस समय मुगल साम्राज्य की तेजी से पतन हो रहा था। इस काल में रोहिला कुलीनों ने मुगल शाही परिवार पर अत्याचार किए और उसके उपरांत मराठा सरदारों ने मुगल छवि को धूमिल किया जिन्होंने एक संक्षिप्त समय के लिए दिल्ली शहर पर कब्जा किया। ब्रिटिश 1803 में मराठों को हराकर दिल्ली में विजयी बन कर प्रविष्ट हुए। शीघ्र ही दिल्ली पर ब्रिटिश नियंत्रण की आधारभूत-संरचना की स्थापना हुई। मुगल बादशाह को ब्रिटिश शासन का पेंशनभोगी बन दिया गया और हालांकि मुगल साम्राज्य आगे के 50 वर्षों तक चला परन्तु यह सभी प्रकार की शक्ति और अधिकारों से वंचित था। फिर भी, सैद्धान्तिक रूप से मुगल बादशाह अभी भी प्रभुसत्ता-संपन्न शासक था तथा जाट, रोहिला, मराठा और ब्रिटिश शासन को अपनी राजनीति के लिए आम समर्थन हेतु मुगल बादशाह की स्वीकृति की आवश्यकता थी। दरबारी शिष्टाचार तथा तौर-तरीके पूर्ववत ही चलते रहे, हालांकि पहले का मुगल वैभव खत्म हो चुका था। सत्ता ब्रिटिश शासन की ओर स्थानांतरण होने के कगार पर थी परन्तु कला और साहित्य के संरक्षण के लिए मुगल साम्राज्य की उपस्थिति आवश्यक थी।

मिर्ज़ा मोहम्मद असदुल्लाह ख़ान ग़ालिब, (1797-1869) जिनका जन्म इस राजनीतिक परिवेश में हुआ, अभिजात परिवार से संबंधित थे। उनके पिता, अब्दुल्लाह बेग ख़ान, रामपुर सेना के अधिकारी थे। उनकी मृत्यु के उपरांत, ग़ालिब का पालन-पोषण उनके चाचा, नसरुल्लाह ख़ान ने किया जो ब्रिटिश सेना में घुड़सवार फौज़ के अधिकारी थे। उनकी मृत्यु के उपरांत, जब ग़ालिब केवल 9 वर्ष के थे, उनका बचपन आगरा में उनके ननिहाल में बीता। उन्होंने छोटी उम्र से ही फ़ारसी में कविता लिखना शुरू कर दिया था जो पारंपरिक विज्ञान की अपेक्षा उनके भाषा और साहित्य के प्रति रूझान को प्रकट करता है। उनके उस्ताद, अब्दुस समद, फ़ारसी और अरबी भाषा के एक विख्यात विद्वान थे। ग़ालिब ने छोटी उम्र से ही फ़ारसी में लेखन आरंभ कर दिया था। परन्तु ग़ालिब के प्रारंभिक जीवनी-लेखक, अलताफ हुसैन हाली, अपनी 'यादगार-ए-ग़ालिब' (Memory of Ghalib, 1897) में बताते हैं कि ग़ालिब ने छोटी उम्र से उर्दू में भी लेखन आरंभ कर दिया था। यह 1813-1815 (कुछ लागे 1810 मानते हैं) के आसपास का काल था जब ग़ालिब ने दिल्ली आने का निर्णय किया। वे दिल्ली के अभिजात वर्ग में अपना स्थान बनाने का निश्चय कर चुके थे और एक कवि के रूप में अपनी योग्यता-तुल्य स्थान पाना चाहते थे। यह निश्चय इस तथ्य से भी प्रेरित था कि उनके पिता और चाचा की अकाल मृत्यु ने उन्हें मुगल राजधानी में उनके आश्वस्त स्थान से वंचित कर दिया था। इसके अलावा, दिल्ली जो मुगल दरबार का स्थान था, ग़ालिब के लिए आगरा से कहीं अधिक उचित स्थान था। इस पहलू का थोड़ा विवरण आवश्यक है।

18वीं शताब्दी की राजनैतिक उथल-पुथल ने मीर और सौदा जैसे महान कवियों को दिल्ली छोड़कर लखनऊ में, जो ब्रिटिश के सहयोगी अवध राज्य की राजधानी था, में शरण लेने पर विवश

किया। परन्तु 19वीं शताब्दी में दिल्ली में ब्रिटिश औपनिवेशिक उपस्थिति ने शांति का माहौल स्थापित किया तथा अराजकता और असुरक्षा को खत्म कर दिल्ली शहर को सुरक्षित बनाया। इस वातावरण का दिल्ली में बौद्धिक विकास में प्रमुख योगदान रहा। एक अन्य आधुनिक जीवनी-लेखक राल्फ रसल (त्सची त्नेमसस) के अनुसार ब्रिटिश राजनीतिक नियंत्रण के उपरांत आगे के 50 वर्षों में दिल्ली ने एक प्रकार के पुनर्जागरण की अनुभूति की जिसके अंतर्गत यहाँ साहित्य और अध्ययन का प्रभाव फैला। इस पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति कई रूपों में हुई, जिसमें एक मुस्लिम धर्म सुधार आंदोलन था, जिसे शाह वलीउल्लाह के परिवार ने नेतृत्व प्रदान किया जो भारतीय इस्लाम के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण विचारक माने जाते हैं। इसने परम्परावादी और परिवर्तन समर्थक सुधारकों के प्रति एक लंबे संघर्ष को जन्म दिया। इसके फलस्वरूप दिल्ली का विकास फ़ारसी और अरबी में धर्मविज्ञान के एक प्रसिद्ध केन्द्र रूप में हुआ जिसने मध्य एशिया के बल्ख़ और बुख़ारा जैसे दूर-दराज़ के शहरों से भी विद्यार्थियों को आकर्षित किया। दिल्ली से कवियों का लखनऊ पलायन भी रूक गया और दिल्ली पुनः विशिष्ट कवियों के समूह का केन्द्र बन गई। उर्दू को भी नया जीवन मिला। 1803 में शाह वलीउल्लाह के पुत्र, शाह रफीउद्दीन ने कुरान का उर्दू अनुवाद प्रस्तुत किया जो कि एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। यह रचना न केवल धार्मिक आंदोलन के इतिहास की बल्कि आधुनिक उर्दू गद्य के इतिहास की भी एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। ऊर्द गद्य की यह एक अग्रणी रचना थी।

काव्य का यह पुनरुद्धार मुगल दरबार के प्रोत्साहन के कारण भी संभव हो सका जो सभी प्रकार के राजनीतिक शक्ति से वंचित था तथा जिसने अधिक से अधिक सांस्कृतिक क्षेत्र में रूचि लेना प्रारंभ किया। इस मुगल दरबार ने उर्दू को संरक्षण दिया जो पहले फ़ारसी को प्राप्त था। बहादुर शाह के शासनकाल में, जो स्वयं एक महान उर्दू कवि थे और 'ज़फ़र' उपनाम से कविताएँ लिखते थे, मुगल दरबार उर्दू लेखन का महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया। महल में तथा शहर के अन्य स्थानों पर नियमित रूप से उर्दू मुशायरों का आयोजन किया जाने लगा। धीरे-धीरे उर्दू काव्य लिखना और इसकी सराहना प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के लिए आवश्यक अंग बन गई जो शहर के सांस्कृतिक जीवन का भाग बनना चाहता था।

ग़ालिब ने शहर के अभिजात वर्ग के तुल्य ही अपना स्थान बनाया तथा वे दिल्ली के बौद्धिक जीवन में पूर्ण रूप से शामिल हुए। उर्दू साहित्यिक समाज में ग़ालिब के प्रसिद्ध समकालीनों में मोमिन और ज़ौक प्रमुख थे। ज़ौक मुगल दरबार के आधिकारिक तौर पर नियुक्त किये गए राजकवि और बहादुर शाह ज़फर के व्यक्तिगत उस्ताद थे।

क्योंकि संरक्षण अभी भी साहित्यिक विकास के लिए एक आवश्यक तत्त्व था और मुगल साम्राज्य अपने स्पष्ट पतन के बावजूद ऐसा संरक्षण प्रदान करने में योग्य प्रतीत होता था, अतः कवि अभी भी राजा के ध्यानाकर्षण के लिए प्रयासरत रहते थे। फिर भी मुगल काल में संरक्षण से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि अध्ययन और लेखन को संरक्षण कुलीनों का एक सामाजिक कार्य माना जाता था तथा स्थापित कवि केवल इस आधार पर संरक्षण प्राप्त करने की अभिलाषा कर सकते थे कि वे कुशल कवि थे। उनसे कभी-कभी अपने संरक्षक की शान में प्रशस्ति या संबोध-गीत की आशा की जाती थी परन्तु 'संरक्षक-आश्रित' संबंध का यह आधार नहीं था। अतः ग़ालिब ने कभी भी इस प्रकार की प्रशस्ति लेखन, मुगल और बाद में ब्रिटिश शासकों की शान में प्रशंसा को अपने आत्म-सम्मान के लिए आपत्तिजनक नहीं माना। परन्तु इस काल के अग्रणी कवियों जिनमें ग़ालिब भी शामिल हैं की सबसे बड़ी विडंबना यह थी कि बहादुर शाह के संरक्षण के बावजूद राजनैतिक परिस्थितियों ने मुगलों को काव्यों को सराहने की भावना तो दी परन्तु उनके पास इतने संसाधन नहीं थे कि वे इन कवियों को इनाम आदि दे

पाते। इब्राहिम ज़ौक एक शाही उस्ताद थे जिन्हें अपने कार्य के लिए वेतन भी मिलता था परन्तु ऐसा मुगल दरबार के लिए अन्य कवियों को देना संभव नहीं था। ग़ालिब (शहर के कवि) और ज़ौक (मुगल दरबार के कवि) की प्रतिद्वंदिता को इस परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।

इसी कारण ग़ालिब के लेखन में भूतकाल का विषय और उनकी वर्तमान जिंदगी की आर्थिक कठिनाइयों के बीच तीव्र विरोधाभास कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। ग़ालिब की सार्वजनिक रूप से उर्दू की अपेक्षा फ़ारसी को महत्वत्ता को भी उपरोक्त घटनाओं की पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए। यह तर्क दिया जाता है कि हालांकि उर्दू इस काल की लोकप्रिय जीवंत भाषा थी फिर भी यह राजनीतिक अस्थिरता और पतन के परिवेश की उत्पत्ति थी तथा साथ ही यह बची हुई शाही व्यवस्था की भी प्रचलित भाषा नहीं थी। इसी कारण हाली लिखते हैं कि ग़ालिब ने उर्दू लेखन को कोई उपलब्धि नहीं माना। उन्होंने नित्य इसकी भर्त्सना की कि जहाँ उनकी उर्दू गज़लों के पर्याप्त प्रशसंक थे वहीं उनकी फ़ारसी कविताओं, फ़ारसी संबोध-गीतों का कोई भी प्रशसंक नहीं था। पवन वर्मा के अनुसार ग़ालिब की ऐसी प्रतिक्रिया उस काल के अनुरूप थी। यह बीते हुए समय का गुणगान करने और इसकी वर्तमान काल में वैधता स्थापित करने का प्रयास था जिससे वे वर्तमान काल की कठिनाइयों से स्वयं को उबार सकें। परन्तु अपने पूर्वकालीन और समकालीन कवियों की अपेक्षा ग़ालिब के विचार मुगल साम्राज्य के पतन के कारण कड़वाहट से परिपूर्ण और बीते हुए समय में जाने की उत्कंठा से परिपूर्ण नहीं थे। बल्कि हम पाते हैं कि ग़ालिब ने इस क्षति को महसूस नहीं किया तथा उन्होंने ब्रिटिश वर्चस्व की स्थापना को स्वीकारना भी शुरू किया। वह भौतिक उपलब्धियों से मोहित थे जिस पर ब्रिटिश सत्ता आधारित थी और भविष्य की संभावनाओं के प्रति उत्साहित थे जिसके द्वार इन उपलब्धियों ने खोल दिए थे।

2.4.7 ग़ालिब की उर्दू गज़लें

आधुनिक जीवनी-लेखक और आलोचक, मोहम्मद सादिक, का यह तर्क है कि यदि ग़ालिब के फ़ारसी काव्यों के खंडों को और जो गर्व उन्होंने इसमें महसूस किया उसे देखा जाय तो उन्हें फ़ारसी कवि की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। परन्तु उन्होंने उर्दू में भी उत्कृष्ट लेखन किया और बाद में इसे अपने संपूर्ण गद्य की भाषा बनाया जिसमें उनके पत्र भी शामिल हैं। राल्फ रसल (त्संची त्लेमसस), एक अन्य आधुनिक जीवनी-लेखक, मानते हैं कि ग़ालिब दक्षिण एशिया के महानतम कवियों में से एक थे तथा दो महान साहित्यिक भाषाओं फ़ारसी और उर्दू के महानतम शायर या कवि थे। यह सत्य है कि उर्दू लेखन के प्रारंभिक चरण में उनकी कविताएँ फ़ारसी शब्दों से अधिक आच्छादित रहती थीं परन्तु इसकी उनके मित्रों द्वारा आलोचना की गई और अन्यों ने इसका उपहास उड़ाया। इसके उपरांत उन्होंने अपनी अधिकतर प्रधान रचनाओं को नष्ट कर दिया और सरल तथा परिष्कृत भाषा में लिखना प्रारंभ किया।

चाहे फ़ारसी हो या उर्दू, ग़ालिब की अधिकतर कविताएँ गज़ल रूप में लिखीं गईं जो पारंपरिक शैली में काव्य लेखन की सबसे लोकप्रिय शैली थी। गज़ल कई द्विपदी (ब्वनचसमज) की श्रृंखलओं से बनती है तथा प्रत्येक द्विपदी अपने आप में पूर्ण होती है। कभी-कभी एक ही विषय अन्य द्विपदियों में भी हो सकते हैं जैसा ग़ालिब की कुछ गज़लों में प्रकट होता है।

परन्तु साधारणत: गज़ल की प्रत्येक द्विपदी स्वतंत्र और अपने में पूर्ण होती है और इस प्रकार कवि के परिवर्तनशील विचारों के लिए पर्याप्त स्थान प्रदान करती है। उर्दू काव्य का एक विशिष्ट लक्षण यह है कि इसमें काव्य लिखा नहीं जाता बल्कि कहा जाता है, और कवि, जो इसे कहता है, वह इसे श्रोताओं को सुनाता है (साधारणत: मुशायरों में)। इसके उपरांत ही इन गज़लों को प्रकाशन के लिए भेजा जाता है।

गज़ल एक लघु कविता है जिसमें सामान्यत: पाँच से अधिक और बारह से कम द्विपदियाँ होती हैं। गज़ल में व्यक्त किए गए विषयों की पहुँच अत्यंत विस्तृत होती है और किसी भी प्रकार के विचार को जिसे एक सरल द्विपदी में निरूपित किया जा सके विषय बनाया जा सकता है। फिर भी गज़ल में 'प्रेम' के विषय का वर्चस्व होता है। 17वीं शताब्दी के आखिरी चतुर्थांश से उर्दू काव्य अधिकतर 'प्रेम पर काव्य' रूप में विकसित हुआ न कि 'प्रेम काव्य' रूप में। इसका कारण यह था कि ऐसी स्थिति में यह वास्तविकता की परिधि से स्वतंत्र था। ग़ालिब की कविताएँ इसका उत्तम उदाहरण हैं। काव्य लेखन में कवि की प्रतिभा उसके विचारों की विविधता और प्रस्तुतीकरण की शैली में निहित है। ग़ालिब ने इन दोनों पहलुओं में न केवल अपने पूर्वकालीन बल्कि अपने समकालीन कवियों से भी अधिक महारत हासिल की।

ग़ालिब के लिए गज़ल पारंपरिक विषयों पर लिखी गई रचना ही नहीं बल्कि उनके स्वयं के विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति थी। हालांकि गज़ल के संपूर्ण पारंपरिक विषयों को उनकी गज़लों में स्थान मिला जिसमें आदमी (प्रेमी) का उसकी गृहिणी (प्रेमिका) के लिए दीवाना और स्वयं को नष्ट कर देने वाला प्रेम शामिल था, ग़ालिब ने अपनी गज़ल में नवीन प्रयोग भी किए जो विशेष रूप से प्रेम और धर्म जैसे विषयों से संबंधित थे। धर्म संबंधी या आध्यात्मिक विषयों में उन्होंने आदमी के ईश्वर से संबंध को तथा ईश्वर की संसार में भूमिका को नवीन रूप में प्रस्तुत किया। आधुनिक जीवनी-लेखकों के अनुसार ग़ालिब के उर्दू काव्य के विशिष्ट चारित्रिक गुण इस प्रकार हैं-

1. मानव, ईश्वर और संसार का एक उत्साही, भावरहित, तटस्थ प्रेक्षण।
2. स्वतंत्रता और आत्म-सम्मान को अत्यधिक महत्वत्ता।
3. लेखन में मौलिकता को महत्वत्ता।
4. जीवन में मिलने वाले सभी परिणामों पर आखिरी बूंद तक आनंद मनाने की सक्षमता।
5. एक शुष्क, अदम्य, निस्संकोच व्यंग्य जो ग़ालिब अपनी गज़ल के किसी भी विषय में प्रस्तुत करने की योग्यता रखता है जिसमें ऐसे विषय भी शामिल हैं जिन्हें वह अत्यंत गंभीरता और तीव्रता से महसूस करता है।

2.4.8 ग़ालिब की गज़लों में 'प्रेम'

हालांकि ग़ालिब ने विविध विषयों पर लिखा परन्तु प्रेम का विषय प्रखर था जिसे उन्होंने अपनी गज़लों के रूप में व्यक्त किया। वास्तव में गज़ल का शब्दिक अर्थ ही 'प्रेमियों के बीच वार्तालाप' होता है। गज़ल में प्रेमी कवि अपनी प्रेमिका के प्रति अपने उत्कट प्रेम को प्रकट करता है। ग़ालिब की द्विपदियों में जिसे 'शेर' कहा जाता है यह अत्यधिक नियमित रूप से दृष्टिगोचर होती है। वह प्रेम में अभिभूत, सामर्थ्यहीन होने, प्रेम करने में मिलने वाले आनंद जिसमें उसकी प्रेमिका कोई उत्तर नहीं देती और प्रेमिका के उत्तर आ जाने पर मिलने वाले अत्यधिक आनंद के बारे में लिखते है। वह अपने प्रेम की अनिवार्यता पर भी लिखते है जिसमें अपनी प्रेमिका द्वारा ठुकराया जाना भी उन्हें स्वीकार है या वह ऐसे प्रेम की भी बात करते है जो उस स्थान के सभी सामाजिक और धार्मिक नियमों को तोड़ देते हैं जहाँ उनकी प्रेमिका का वास है। ग़ालिब की गज़लों का एक चारित्रिक लक्षण उनके ऐसे लेखन में दृष्टिगोचर है जहाँ वह अपनी कविताओं में प्रेम पर लिखते हुए (जिसमें उसका स्वयं का प्रेम भी शामिल है) स्वयं को परम्परावादी गज़ल कवियों से अलग कर लेते हैं। साथ ही वह अन्य कवियों की अपेक्षा इसे एक तटस्थ प्रेक्षक की भांति देखते हैं।

ग़ालिब के काव्य का एक अन्य विशिष्ट लक्षण प्रेम और इसके लक्षणों का गैर-पारंपरिक रूप में प्रस्तुतीकरण है। जो प्रेम ग़ालिब अपनी गज़ल में प्रस्तुत करते हैं वह अवैध प्रेम है। कवि की प्रेमिका संभवत: किसी अन्य की प्रेमिका या पत्नी है या गणिका या एक सुंदर लड़का है। इस प्रकार के प्रेम और प्रेमियों को मध्यकालीन भारतीय समाज में (जिसकी गज़ल स्वयं एक उत्पत्ति थी) हेय दृष्टि से देखा जाता था और ऐसे प्रेमियों को दुख और कष्ट का सामना करना पड़ता था।

इन गज़लों में व्यक्त प्रेम का एक अन्य आयाम यह है कि कवि की प्रेमिका (स्त्री या पुरुष) मानवीय प्रेमिका नहीं भी हो सकती है। ऐसी गज़लों में कवि ईश्वर या आदर्श जीवन जिसके प्रति वह पूर्ण रूप से समर्पित है के प्रति भी प्रेम प्रकट कर सकता है। इस प्रकार गज़लों में, जिसमें ग़ालिब की गज़लें भी शामिल हैं, प्रेम के दोनों आयाम- भौतिक और अलौकिक शामिल थे। कवि ऐसी भाषा और प्रतीकों का प्रयोग करता है जो उसे एक ही समय में प्रेम के विभिन्न अर्थों पर बोलने में सक्षम बनाते हैं।

ग़ालिब तथा अन्य समकालीन कवियों की उर्दू गज़लों में प्रस्तुत सांसारिक प्रेम मध्यकालीन भारतीय समाज में इसकी स्वीकृति के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इस युग में विवाह सामाजिक स्तर बनाये रखने हेतु परिवारों के मेल का माध्यम हुआ करता था और इसका दीवाने और रोमांचक प्रेम से कोई सरोकार नहीं था। परन्तु विवाह इस प्रकार के प्रमे के लिए सदैव सुरक्षा कवच नहीं बन पाते थे। वैवाहिक संबंधों की अपेक्षा बाहर स्थापित प्रेम, प्रेमी और प्रेमिका दोनों के लिए एक कठिन परीक्षा थी क्योंकि इस प्रेम में प्रेमी युगल के स्थायित्व की कोई संभावना नहीं थी अत: ऐसा प्रेम अंतत: प्रेमी और प्रेमिका दोनों के लिए त्रासदी का कारण बनता था। यह इस प्रकार का कष्टदायी प्रेम था जिसने गज़लों को प्रखर विषय प्रदान किए। ऐसे समाज में जहाँ स्त्रियों और पुरुषों को अत्यंत कठोरता से दूर रखा जाता था, प्रेम का एक अन्य मार्ग समलैंगिकता था। ग़ालिब के समय के सुसंस्कृत समाज में ऐसा प्रेम, जो पारंपरिक इस्लाम में निंदित था, आम था और इस पर कोई शत्रुतापूर्ण प्रतिक्रिया भी नहीं होती थी। कवि का ऐसा कोई भावुक अनुभव जो उसके काव्य में व्यक्त होता था, अत: उर्दू गज़लों में 'प्रेमिका' एक सुंदर लड़का भी हो सकता था। स्त्री और पुरुषों को कठोरता से अलग-अलग रखने का एक अन्य परिणाम, जिसमें आदरणीय मध्यकालीन भारतीय स्त्रियों की शैक्षिक और सांस्कृतिक स्तर पर कमी भी शामिल है, गणिकाओं या तवायफों के संस्थागत आविर्भाव के रूप में परिलक्षित हुआ। एक अत्यंत रूढ़िवादी समाज में केवल तवायफ़ों के 'कोठों' ने पुरुषों के लिए ऐसा मंच तैयार किया जहाँ बड़ी आसानी से वे बिना किसी व्यवधान के स्त्रियों से सामाजिक रूप में मिल सकते थे। इस विकास ने भी इस काल में काव्यात्मक पुनर्जागरण के लिए प्रचुर मात्रा में प्रतीक और मूर्त रूप प्रदान किए। इस प्रकार उर्दू गज़लों में, अधिकतर, प्रेमिका की छवि गणिका की छवि में परिणत हो गई।

उर्दू 'गज़लों' में व्यक्त प्रेम का एक अन्य महत्त्वपूर्ण आयाम, जिसमें ग़ालिब की गज़लें भी शामिल हैं, आध्यात्मिक प्रेम है। जिसे प्राय: सांसारिक प्रेम से सम्मिश्रित कर प्रस्तुत किया जाता है। दो व्यक्तियों के बीच उत्कट और अवैध प्रेम को चिन्हों के रूप में या प्रतीकात्मक रूप में आध्यात्मिक प्रेमी और ईश्वर के मध्य प्रेम को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। आध्यात्मिक प्रेम की संपूर्ण संरचना प्रेमी के ईश्वर से अत्यंत भावुक संबंध पर आधारित है। ऐसी स्थिति में, ईश्वर को प्राप्त करने वाला अपने मार्गदर्शन के लिए ईश्वरीय प्रेम पर निर्भर रहता है और उसे किसी विद्वान या स्वयं घोषित धर्म के संरक्षक के हस्तक्षेप या सहायता की आवश्यकता नहीं होती। आध्यात्मिक प्रेमियों के इस प्रकार के उग्र तरीकों को रूढ़िवादियों द्वारा विनाशक नीति या ईशनिदां माना जाता है। इस प्रकार आध्यात्मिक और सांसारिक प्रेमी दोनों ही समाज के हाथों भयानक हश्र के भागीदार होते हैं। इसके अलावा, गज़ल परंपरा में प्रेमिका को

प्रेमी के प्रति अत्यंत निष्ठुर दिखाया जाता है परन्तु प्रेमी इन सभी कष्टों को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार करता है यहाँ तक कि वह मृत्यु से भी नहीं डरता। ग़ालिब की कई गज़लों में सांसारिक और आध्यात्मिक प्रेम का प्रस्तुतीकरण एक दूसरे में अंतर्गुम्फित रूप में है। इस प्रकार, उनकी कुछ द्विपदियों को सांसारिक या इहलोक भाव में और अन्य को दैवीय रूप में देखा जा सकता है। परन्तु इनमें से कई द्विपदियों को एक ही समय में दोनों ही रूपों में देखा जा सकता है। इस प्रकार मानवीय प्रेमिका के लिए प्रयुक्त होने वाले रूपक दैवीय प्रेमिका के लिए भी उचित सिद्ध होते हैं।

2.4.9 ग़ालिब और धर्म

ग़ालिब का जीवन के प्रति दृष्टिकोण एक प्रकार से प्रतिबंधक नैतिकता के विरूद्ध विद्रोह था। साथ ही ग़ालिब के धर्म के प्रति विचार भी पारंपरिक धर्म के विपरीत थे। जब उनका दिल्ली में आगमन हुआ, शहर का बौद्धिक जीवन, जैसा पहले ही लिखा जा चुका है, परम्परावादी और उग्र विचारकों के मध्य धार्मिक द्वंद्व से प्रभावित था। यह विवाद केवल धर्म क्षेत्र तक ही सीमित नहीं था, बल्कि समस्त शिक्षित मुस्लिम इससे प्रभावित थे, और साधारण रूप में, समर्थन एक समूह या दूसरे समूह को मिला करता था। परन्तु ग़ालिब की स्वयं की स्थिति काफी अलग थी, हालांकि उनके घनिष्ठ मित्र फज़्ल-ए-हक परंपरावादी विचारों के एक प्रतीक स्तम्भ थे परन्तु ग़ालिब ने अपने मित्र के प्रति प्रशंसा को अपने निणर्य पर हावी नहीं होने दिया। हालांकि ग़ालिब के धर्म पर हुए विकसित विचारों पर बहुत अधिक वर्णन उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु उनका ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण हमेशा श्रद्धा का नहीं रहा। उन्होंने पूर्वकालीन फ़ारसी और उर्दू कवियों की ही भांति यह विचार व्यक्त किया कि मनुष्य ईश्वर के हाथों में एक असहाय कठपुतली है, परन्तु फिर भी वह अनुचित रूप में अपने कार्यों के लिए ईश्वर के समक्ष उत्तरदायी है। ऐसे भाव, फिर भी, ग़ालिब के लेखन में व्यंग्य रूप में व्यक्त होते हैं।

ग़ालिब का धर्म के प्रति दृष्टिकोण सूफी संत के ईश्वरीय प्रेम के समान ही था। उन्होंने अपना जीवन ऐसे सिद्धांतों पर जिया जो रूढ़िवादी विचारों से मौलिक रूप में अलग था जिन्हें गज़लों में शेख़, धार्मिक नेता के नाम से संबोधित किया गया। ग़ालिब ने मौलवियों द्वारा जीवन के निर्धारित नियमों का भी तिरस्कार किया। जो आने वाले जीवन में ईनाम की आशा और सजा के डर से प्रेरित थे।

उनकी रचनाओं में शराब या मदिरा (जो धरती पर मुस्लिम के लिए मना है), साकी (मदिरा पिलाने वाला) और मयख़ाने का बार-बार उल्लेख आता है। परन्तु उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उनकी रचना में इन शब्दों का उल्लेख हिंद-फ़ारसी काव्य की उत्तम परम्परा के अनुकूल है जो मुख्यत: प्रतीकात्मक रूप में है। ग़ालिब ने कभी भी रमज़ान में व्रत नहीं रखे और इसे स्वीकारने को तैयार भी रहे। उन्होंने अपने व्यसनों को स्वीकारा (शराब पीना और जुआ खेलना), उपदेशकों का उपहास उड़ाया और जीवन को साधारणत: एक मनमौजी के रूप में जिया जब भी उनकी आर्थिक स्थिति ने उन्हें इसका अवसर प्रदान किया।

ग़ालिब के अनुसार ईश्वर को मंदिर की मूर्ति या मस्जिद में नमाज़ अदा कर नहीं प्राप्त किया जा सकता। एक सच्चे अध्यात्मिक व्यक्ति को इन संकीर्ण श्रेणियों में नहीं बंधना चाहिए। ग़ालिब की धार्मिक कर्मकांडों के प्रति इस प्रकार के तिरस्कार में अत्यंत गहन विभिन्नदर्शनग्रहणता निहित थी। उनके इस विचार में मानवीय भाईचारे के प्रति दृढ़ विश्वास प्रकट होता था तथा ये दोनों ही दैवत्व के चिन्ह और सर्वशक्तिमान ईश्वर के प्रेम के प्रतीक थे।

ग़ालिब के धर्मनिरपेक्षीय आदर्शों को इस तथ्य से भी आंका जा सकता है कि उन्होंने अंततः बनारस (हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध धामिर्क स्थान) में रहने की इच्छा प्रकट की। ग़ालिब का स्थापित नियमों का तिरस्कार तत्कालीन उदार सूफी विचारों के अनुरूप था। इस उदार विचार ने उर्दू भाषा के विकास को तीव्र करने में भी भूमिका अदा की है। हालांकि फ़ारसी मुगल दरबार और इस्लामिक परंपरा की भाषा थी, पर यह जनमानस की भाषा कभी नहीं बन सकी। यह उर्दू का उत्थान और विकास था जिसने अपने शब्द और बोली लोगों की दैनिक बोली से ग्रहण किए जो अंततः सांस्कृतिक समन्वय की स्थापना में प्रभावी सिद्ध हुई।

अधिकतर गज़ल कवियों की ही भांति ग़ालिब ने भी ईश्वर की सूफी विचारधारा का प्रयोग किया जिसके अंतर्गत ईश्वर ने स्वयं को इस संसार में व्यक्त किया है। इस प्रकार सौंदर्य की पूजा ईश्वर की पूजा के तुल्य है। सौंदर्य की पूजा को एक सुंदर स्त्री या सुदंर लड़के के प्रति प्रेम के रूप में भी समझा जा सकता है। यहाँ हमें सौंदर्य की पूजा में हिन्दू धर्म के प्रतीकों की झलक मिलती है। इसका कारण यह है कि रूढ़िवादी इस्लाम का हिन्दुओं का विरोध मूर्ति पूजा से भी संबंधित था। परन्तु ग़ालिब जैसे सूफियाना विचारों के व्यक्ति के लिए यह महत्त्वपूर्ण नहीं था कि वे मूर्ति पूजते हैं या नहीं बल्कि उनके लिए महत्त्वपूर्ण यह था कि लोग इस प्रकार की पूजा में क्या सच्चे हृदय से ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट करते हैं या नहीं। मूर्ति, ग़ालिब के अनुसार, एक अत्यन्त सम्मोहक सुंदर प्रेमिका थी जिसकी प्रेमी आराधना और पूजा करता है। साथ ही यह प्रेमिका ईश्वरीय प्रेम का भी प्रतीक है। ग़ालिब के धर्म पर विचार तत्कालीन गज़लों में व्यक्त विचारों से मेल खाते हों परन्तु यह भी सत्य है कि उनकी कविताएँ केवल गज़ल की परंपरा में ही लिखी गई रचनाएँ नहीं थी बल्कि ये उनके स्वयं के विश्वासों और आदतों की अभिव्यक्ति थीं।

2.4.10 ग़ालिब के पत्र (गद्य)

ग़ालिब की साहित्यिक प्रतिभा केवल काव्य तक ही सीमित नहीं थी बल्कि यह गद्य में भी परिलक्षित होती है। उनके उर्दू गद्य मुख्य रूप से पत्रों के रूप में हैं। वह एक प्रतिभाशाली पत्र लेखक थे, और कुछ विद्वानों का मत है कि केवल उनके पत्रों के आधार पर ही उन्हें उर्दू साहित्य में विशिष्ट स्थान दिया जा सकता है। हाली ने अपनी 'यादगार-ए-ग़ालिब' में लिखा है कि- "जहाँ भी देखा जाय, ग़ालिब की संपूर्ण भारत में प्रसिद्धि उनके उर्दू या फ़ारसी काव्यों की अपेक्षा उर्दू गद्यों (पत्रों) के प्रकाशन के कारण अधिक है।" मिर्ज़ा ग़ालिब के पत्रों ने आधुनिक उर्दू गद्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जिनमें से अधिकतर उनके जीवनकाल में ही प्रकाशित किए जा चुके थे। उनके पत्रों ने सरल और लोकप्रिय उर्दू के लिए आधार प्रदान किया। ग़ालिब से पहले उर्दू में पत्र लेखन अत्यधिक अलंकृत और बनावटी था। ग़ालिब ने उर्दू में पत्र लेखन की पूरी शैली को ही बदल दिया। उन्होंने अपनी भाषा को सरल रखा तथा साहित्यिक बनावटीपन की अपेक्षा स्वाभाविकता पर बल दिया। उन्होंने अपने पत्रों को 'बोलचाल' की शैली में लिखा और ऐसा प्रतीत होता था कि वे अपने पाठक से पत्र द्वारा बात कर रहे हों। उन्होंने एक बार अपने मित्र को लिखा, "मैनें एक नई शैली ईजाद की है जिससे पत्राचार अब वार्तालाप बन गई है। हज़ारों मीलों की दूरी से भी आप अपनी कलम द्वारा बोल सकते हो, और अलग रहने के बावजूद सान्निध्य का आनंद ले सकते हो।"

हालांकि समाचार पत्रों की संस्थाओं के आरंभ से पूर्व पत्र एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँचने में समय लेते थे परन्तु फिर भी समाचारों को पहुँचाने का यह एक महत्त्वपूर्ण माध्यम रहा। उनके पत्र बहुत अधिक अनौपचारिक होते थे और कई बार वे केवल अपने मित्र का नाम लिखकर ही पत्र लेखन आरंभ कर देते थे। इस प्रकार की प्रत्यक्ष और वार्तालाप शैली में पत्र लेखन निश्चित रूप से ग़ालिब की उर्दू पत्र लेखन में एक नवीनता थी। उनके दो प्रसिद्ध पत्रों के संकलन 'उर्दू-ए-हिंदी' और 'उर्दू-ए-मुआला' हैं।

ग़ालिब के अधिकतर पत्र उनके मित्रों और संरक्षकों, शार्गिदों, और प्रशंसकों को लिखे गए जो समाज के विभिन्न वर्गों से आते थे। ग़ालिब ने अपना बहुत समय और प्रयास इन पत्रों के लेखन में व्यय किया क्योंकि वे इसे भी एक प्रकार का साहित्यिक अनुसरण मानते थे। रोचक तथ्य यह है कि ग़ालिब के सबसे अधिक पत्र (कुल 123) उनके हिंन्दू मित्र मुंशी हरगोपाल तुफ्ता को प्राप्त हुए। कवि बनने की अभिलाषा रखने वाले लोगों ने भी सलाह के लिए ग़ालिब को अपनी रचनाएँ भेजीं। अपने उत्तर में उन्होंने स्वयं की एक या दो द्विपदियाँ लिखीं और पत्र लिखने वाले कवि द्वारा काव्य क्षेत्र में की जा रही प्रगति को विस्तार से बताया। पारंपरिक बनावट से मुक्त, उनके पत्रों में विविध विवरण और विनोदपूर्ण संवाद, साहित्यिक और शब्दात्मक अंतर्दृष्टि, राजनीतिक टीका आदि सब सरल और सुनम्य भाषा में विद्यमान था।

ग़ालिब के पत्र न केवल कवि के जीवन की घटनाओं की जानकारी देते हैं बल्कि ये उस उपद्रवी काल के भी प्रत्यक्ष साक्षी हैं जो कवि ने देखे। वह मुगल साम्राज्य के पतन और समाप्ति के साक्षी थे और उन्होंने 1857 का विद्रोह और इसके बाद हुए रक्तपात को भी देखा। इस प्रकार, ग़ालिब के पत्र साहित्यिक महत्वत्ता के अलावा ऐतिहासिक प्रासंगिकता के लिए भी जाने जाते हैं क्योंकि ये पत्र इस काल के दिल्ली के जीवन का विश्वसनीय विवरण देते हैं। ग़ालिब के पत्र, विशेष रूप से वे जो विद्रोह और अंग्रेज़ों द्वारा दिल्ली पर पुनः कब्जा करने के बाद लिखे गए, उसके दिल के मार्मिक कष्ट और व्यथा को प्रकट करते हैं जो उसने अपने शहर को अंगेज़ों द्वारा निमर्म ता से ध्वस्त और नष्ट किए जाते देखा जिसका वह प्रशंसक और बड़ा प्रेमी था। परन्तु अपने मित्रों और जाने-पहचाने चेहरों के खत्म हो जाने से अधिक ग़ालिब ऐसे लोगों के खत्म हो जाने से दुखी था जो बौद्धिक और भावुक रूप में उसकी भाषा बोल सकते थे। इसी संदर्भ में, 1861 में, ऐसे ही एक पत्र में उन्होंने लिखा, "दिल्ली के लोगों का अब अर्थ हिन्दू कलाकार, सैनिक, पंजाबी या अंग्रेज़ों से है। इनमें से कौन वह भाषा बोलता है जिसकी आप प्रशंसा करते हो? ....ज़ौक कहाँ है? मोमिन खा़ न कहाँ हैं? दो कवि जीवित हैं- एक आज़ुर्दा और वह मौन हो गए हैं, दूसरा ग़ालिब, जो उदासीनता के कारण स्वयं में खो गया है। कोई अब काव्य लेखन करने वाला और इसका मूल्य समझने वाला नहीं है....।" इस प्रकार ग़ालिब के उर्दू में संकलित पत्र 19वीं शताब्दी के औपनिवेशिक भारत पर रूचिकर जानकारी प्रदान करते हैं।

2.4.11 उपसंहार

मिर्ज़ा ग़ालिब को उर्दू के 'चार स्तम्भों' में से एक माना जाता है। वे उर्दू गद्य और पद्य में अपने योगदान के कारण लोकप्रिय हुए। अपनी उर्दू ग़ज़लों के कारण उनके अनेक प्रशंसक थे परन्तु उनकी फ़ारसी रचनाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। उनके पत्र जो मुगल साम्राज्य के पतन और 1857 के विद्रोह के समय दिल्ली में जीवन को बताते और अंकित करते हैं हमारे लिए समकालीन इतिहास समझने में सहायक हैं।

अभ्यास-4

(अ) निम्न के लिए 'सही' या 'गलत' बताईये:

(i) गौरी के काल से दिल्ली में स्थापित तुर्की सेना को उर्दू या उर्दू-ए-मुआला के नाम से जाना जाता था।

(ii) मीर, सौदा और दर्द उर्दू के प्रसिद्ध कवि थे।

(iii) शम्सुद्दीन वली उल्लाह, दक्कन के प्रसिद्ध रेखता कवियों में एक, वली दक्कनी के नाम से लोकप्रिय थे।

(iv) मिर्ज़ा गालिब अपने पत्रों के लिए भी जाने जाते थे जिसमें 1857 की घटनाओं का भी उल्लेख है।

(v) गालिब के सबसे अधिक पत्र मुंशी हरगोपाल तुफ्ता को प्राप्त हुए।

(ब) मिर्ज़ा गालिब के प्रसिद्ध पत्रों के संकलन को ..... कहा जाता है।

(i) यादगार-ए गालिब (ii) उर्दू

(iii) रेखता (iv) उर्दू-ए-हिंदी

(स) उर्दू-ए- मुआला ..... का एक संकलन है।

(i) गज़ल (ii) कविताएँ

(iii) पत्र (iv) कहानियाँ

(ड) लघु प्रश्न:

1. गालिब की उर्दू गज़ल
2. गालिब की गज़लों में प्रेम

(च) दीर्घ प्रश्न:

1. भारत में उर्दू भाषा और साहित्य के उद्‌भव का एक संक्षिप्त विवरण दीजिए।
2. किन रूपों में मिर्ज़ा ग़ालिब की उर्दू गज़ल पारंपरिक उर्दू काव्य लेखन से अलग हैं?
3. आधुनिक उर्दू गद्य के प्रोत्साहन में मिर्ज़ा ग़ालिब के पत्रों की महत्वत्ता का विश्लेषण कीजिए।

संदर्भ सूची

1. टी० ग्राहम बेले, 'ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिट्रेचर', दिल्ली, 1979 (पुनः प्रकाशन)
2. मुहम्मद सादिक, 'ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिट्रेचर', ऑक्सफोर्ड, 1964
3. राल्फ रसल, 'द परस्यूट ऑफ उर्दू लिट्रेचर', एक चयनित इतिहास, दिल्ली, 1992
4. राल्फ रसल (संपादित), 'ग़ालिब, लाइफ, लेटर्स, एंड गज़लस', ऑक्सफोर्ड, 2003
5. पवन के० वर्मा, 'ग़ालिब, द मैन, द टाइम्स', नई दिल्ली, 1989
6. क्यू० हैदर एस० जाफरी, 'ग़ालिब, एंड हिज़, पोयट्री', बॉम्बे, 1970
7. मुहम्मद मुजीब, 'ग़ालिब', साहित्य अकादमी, 1970
8. सैय्यद फैय्याज़ महमूद, 'ग़ालिब : ए क्रिटिकल इंट्रोडक्शन', दिल्ली, 1993 (पुनः प्रकाशन)

2.5 क्षेत्रीय भाषा और साहित्य का उत्थान एवं विकास

2.5.1 भूमिका

भारत एक बहु-भाषी और सांस्कृतिक बहुलता का देश है। यह बहु-भाषिता संस्कृति की बहुलता का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। भारत की सांस्कृतिक बहुलता कोई एक रात की घटना या अचानक हुए विकास का परिणाम नहीं है, बल्कि यह हज़ारों वर्षों के हमारे देश के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास पर आधारित है। यह विकास उन तत्त्वों के समागम का परिणाम है जिनमें एक हमारे देश में ऐसी समकालीन शक्तियों के आने और भारत में बसने से हुआ जिनकी विविध संस्कृति थी (जैसे आर्य तुर्क, अफ़गान, मुग़ल, ब्रिटिश आदि) और दूसरा भारत की अपनी भू-राजनैतिक और सांस्कृतिक विविधता। इस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक बहुलता का आधार इसकी आत्मसात करने की प्रवृत्ति और इसकी सांस्कृतिक सहिष्णुता है जिसने विभिन्न सांस्कृतिक तत्त्वों को अपने में समाहित और आत्मसात किया है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वर्तमान काल में भी यह प्रक्रिया जारी है।

भारत की बहु-भाषी परंपरा का आधार भी उपर्युक्त व्याख्या से दूर नहीं है। भारत की भाषायी बहुलता भी इसी प्रकार के सांस्कृतिक समन्वय का परिणाम कही जा सकती है और अपने क्षेत्रीय सांस्कृतिक विविधताओं से पूर्ण रूप से प्रभावित रही। इसके अतिरिक्त इसमें समय-समय पर सुधार होते रहे और साथ ही इसने बाह्य और बाहरी सांस्कृतिक समूहों की भाषाओं से शब्द, व्याकरण नियम लेखन शैली और भाषा रूप को भी सदैव तन्मयता से अपनाया।

यह अध्याय भारतीय क्षेत्रीय भाषा और साहित्य के उत्थान और विकास से संबंधित पहलू को, जो अत्यंत पेचीदगी से परिपूर्ण प्रक्रिया है, प्रकट करने का प्रयास है। यह तीन भागों में विभक्त है पहला भाग वर्नाक्यूलर (Vernacular) भाषा और इसके अर्थ से संबंधित है। दूसरा भाग भारत की आंचलिक भाषाओं के उत्थान और विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास है। तीसरा भाग आंचलिक साहित्य के विकास का एक सर्वेक्षण है जिसमें उन भाषाओं से संबंधित विशिष्ट साहित्यकारों और उनके प्रमुख गद्य और पद्य का विवरण है।

2.5.2 शब्द की परिभाषा और अर्थ

'वर्नाक्यूलर' (Vernacular) शब्द लेटिन भाषा के शब्द 'वेरनेकुलस' से लिया गया है जिसका अर्थ है स्थानीय या घरेलु। 'इलस्ट्रेटड ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' इस शब्द को 'किसी देश की भाषा या बोली' के रूप में, या 'किसी जाति या संप्रदाय की भाषा', या 'घरेलु भाषा' के रूप में परिभाषित करती है। एक विशेषण के रूप में इसकी एक और परिभाषा दी जाती है जिसके अंतर्गत इसे ऐसी भाषा माना जाता है जो 'किसी देश के स्थानीय लोगों की भाषा है जिसकी उत्पत्ति न तो विदेशी है और न ही यह किसी भाषा का परिष्कृत रूप है।

इस परिभाषा से प्रतीत होता है कि कोई भी भाषा जो या तो विदेशी उत्पत्ति की है या विशिष्ट वर्ग की भाषा है ऐसी भाषा को 'वर्नाक्यूलर' भाषा की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। इसके विपरीत साधारण वर्ग के लोगों की भाषा तथा किसी स्थानीय क्षेत्र की भाषा को सुगमता से 'वर्नाक्यूलर' की श्रेणी में रखा जा सकता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखें तो यह कहा जा सकता है कि क्षेत्रीय भाषाएँ (Vernacular Languages) विशिष्ट भाषाओं के साथ-साथ ही विकसित होती हैं। विशिष्ट भाषा के साधारणत: स्पष्ट व्याकरण, साहित्यिक शैली, और रूप होते हैं। यह प्रमुख बोली के रूप में और साहित्यिक भाषा के रूप में जानी जाती है और इसका विस्तार एक बड़े क्षेत्र तक रहता है। वहीं

'वर्नाक्यूलर' भाषा एक सीमित क्षेत्र तक ही प्रचलन में रहती है तथा इसका व्याकरण भी लिखित रूप में अत्यंत दृढ़ या स्पष्ट नहीं होता।

यूरोप में, प्राचीन काल में, लैटिन भाषा एक विशिष्ट भाषा के रूप में प्रचलित थी। महान रोमन साम्राज्य की भाषा के रूप में यह लगभग पूरे यूरोप में प्रचलित थी। यह साहित्यिक अभिव्यक्ति की प्रमुख माध्यम थी तथा स्पष्ट व्याकरण के नियमों, साहित्यिक रूप, और शैली में अनुबद्ध थी। अन्य यूरोपीय भाषाएँ जैसे ग्रीक, जर्मन, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, पुर्तगाली, स्पेनिश, रोमानियन, इतालवी, रुसी, बुल्गारियन, पोलिश आदि भाषाएँ लेटिन की तुलना में स्थानीय या क्षेत्रीय भाषाएँ मानी जाती थीं।

भारतीय उपमहाद्वीप में संस्कृत सबसे पुरानी भाषा है। इसे विभिन्न काल में विशिष्ट वर्ग के लोगों ने इस्तेमाल किया है। सख़्त व्याकरण नियमों, संरचनात्मक रूपरेखा और साहित्यिक शैली इस भाषा और साहित्य की विशेषताएँ रही हैं। ऐतिहासिक संदर्भ में, यह भाषा एक साथ या अलग-अलग रूपों में उत्तर भारत के सभी क्षेत्रों में विद्यमान रही है। इसकी तुलना में भारत की अन्य भाषाएँ जैसे पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा अनेक भारतीय-आर्य भाषाएँ जैसे-आसामी, बंगाली, गुजराती, कश्मीरी, पंजाबी, उड़िया, मराठी, हिंदी, सिंधी आदि (इसके उपरांत इस भाषा समहू को भारतीय-आर्य भाषा कहा जाएगा), संस्कृत की अपेक्षा भारत की स्थानीय या क्षेत्रीय भाषाएँ कही जा सकती हैं।

भारत में, विंध्य के दक्षिण में, तमिल भाषा ने ऐतिहासिक रूप से शास्त्रीय भाषा का दर्ज़ा हासिल किया जैसा उत्तर भारत में संस्कृत का रहा है। दक्षिण भारत की अन्य भाषाएँ जैसे कन्नड़, तेलुगु और मलयालम, यद्यपि अपने क्षेत्रों की प्रमुख भाषाएँ हैं, परंतु तमिल के समक्ष उन्हें 'वर्नाक्यूलर' भाषा का ही दर्ज़ा प्राप्त है।

अत: इस अध्याय में शास्त्रीय भाषाएँ जैसे संस्कृत और तमिल तथा उनके साहित्य का उल्लेख नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि यह अध्याय केवल क्षेत्रीय भाषाओं पर सर्वेक्षण प्रस्तुत करता है न कि शास्त्रीय भाषाओं और उनके साहित्य पर। इसी प्रकार उर्दू और फ़ारसी भाषा का भी जिक्र इस अध्याय में नहीं किया गया है।

अभ्यास-5

(अ) निम्न के लिए 'सही' या 'गलत' बताईये:

(i) प्राचीन काल के यूरोप मे लैटिन भाषा है उत्कृष्ट भाषा के रूप में जानी गई।

(ii) संस्कृत भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे प्राचीन भाषा है।

(iii) आसामी, बंगाली, गुजराती, कश्मीरी, पंजाबी, उड़िया, मराठी, हिंदी, सिंधी भाषाएँ इंडो-आर्य भाषाएँ हैं।

(iv) 'वर्नाक्यूलस' शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा से है।

(v) जिस भाषा का एक व्याकरण, साहित्यिक शैली एवं व्यवस्थित रूप होता है उसे उत्कृष्ट भाषा की श्रेणी में रखा जा सकता है।

(ब) वर्नाक्यूलर भाषा के अर्थ के संदर्भ में निम्नलिखित में कौन सही नहीं है:

(i) यह आम लोगों की भाषा है।

(ii) इसका भौगोलिक विस्तार पारस्परिक रूप से सीमित है।

(iii) इसका एक व्यवस्थित व्याकरण और शैली होती है।

(iv) संभ्रांत वर्ग के लोग प्रायः इसका प्रयोग नहीं करते।

(स) ..... एक क्लासिकल भारतीय भाषा है।

(i) तेलुगु (ii) तमिल

(iii) मलयालम (iv) कन्नड़

2.5.3 भारत में 'वर्नाक्यूलर' भाषाओं का उत्थान और विकास

भारतीय 'वर्नाक्यूलर' भाषाओं के उत्थान या उत्पत्ति को लेकर प्रमुख भाषाविदों में अत्यंत विवाद है। अधिकतर विद्वान इन भाषाओं को उन कबीलाई लोगों की भाषाओं से संबंद्ध कर देखते हैं जो भारत में बाहर से आकर बसे, जैसे नेग्रीटो (Negrito), ऑस्ट्रिच (Austrich), किरात (Kiratas), आर्य (Aryans) आदि। इन विद्वानों के अनुसार संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से उत्तर भारत की आधुनिक भारतीय-आर्य भाषाओं का विकास इन कबीलाई लोगों की भाषाओं के आपसी सम्मिश्रण से हुआ जो भारत में आकर बसे। इसी प्रकार, दक्षिण भारत में अन्य प्रकार के प्रवासी जैसे द्रविड़ों ने तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम जैसी प्रमुख भाषाओं की नींव रखी। यह अध्याय तीन भागों में विभक्त है - पहला भाग भारतीय 'वर्नाक्यूलर' की साधारण रूपरेखा प्रस्तुत करता है। दूसरा भाग उत्तर भारत की भाषाओं के आरंभिक विकास से संबंद्ध है, तथा तीसरा भाग दक्षिण भारतीय 'वर्नाक्यूलर' भाषाओं के आरंभिक विकास का विवरण प्रस्तुत करता है।

पहला भाग : भारतीय 'वर्नाक्यूलर' की उत्पत्ति : एक साधारण रूपरेखा

ऐसा कहा जा सकता है कि संपर्क के माध्यम के रूप में भाषा का कोई रूप भारत में हड़प्पा काल से पूर्व विद्यमान रहा होगा। परंतु लिपि और लेखन के स्पष्ट साक्ष्य हमें हड़प्पा सभ्यता से मिलते हैं। अनेक मिट्टी की मुहरें (सील) जो विभिन्न हड़प्पा स्थलों से मिली हैं उनमें कुछ लेख रूप प्रस्तुत हैं। इतिहासकारों का मत है कि यह हड़प्पा लिपि का उत्कृष्ट रूप है। दुर्भाग्यवश अभी तक इतिहासकार इस लिपि को समझ नहीं पाये हैं। अतः सर्वाधिक प्राचीन साहित्यिक ग्रंथ जिन्हें पढ़ा जा सका है वे वैदिक ग्रंथ हैं। इन वैदिक ग्रंथों में वेद, ब्राह्मण, अरण्यक और उपनिषद् हैं। इनके उपरांत संस्कृत में अनेक प्रसिद्ध रचनाएँ लिखी गईं जैसे रामायण, महाभारत और पौराणिक साहित्यों कीश्रृंखला। इसके साथ-साथ अन्य भाषाओं में भी साहित्यिक रचनाएँ की गई जैसे पाली, प्राकृत, तमिल आदि। इसके उपरांत हम विभिन्न भाषाओं में साहित्यिक निरंतरता और अधिवृद्धि देखते हैं। कुछ प्रमुख भाषाविदों ने उत्तर भारत की 'वर्नाक्यूलर' की उत्पत्ति पश्चिम एशिया से 2500 ई० पू० में हुए भारी संख्या में एशिया और यूरोप की ओर कबीलाई पलायन को दिया है। जिसमें कहा गया है कि इनमें से एक शाखा उत्तरी एशिया को पलायन कर गई जहाँ इसने 'सिमाईटी भाषा समूह' की नींव रखी। अन्य शाखा यूरोप की ओर अग्रसर हुई जहाँ इन्होंने ग्रीक, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं का विकास किया। एक अन्य शाखा दक्षिण एशिया की ओर आई तथा 1500 ई०पू० के आसपास भारत के उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में संस्कृत भाषा का विकास किया जो भारत में सबसे प्राचीन भाषा मानी जाती है। एक ही स्त्रोत से उत्पत्ति बोली और ध्वन्यात्मकता के कारण इन भाषाओं को हिंद-यूरोपीय (Indo-European) भाषा परिवार में रखा गया तथा उत्तर भारत की भाषाओं को और अधिक स्पष्ट करने हेतु उन्हें भारतीय-आर्य (Indo-Aryan) भाषा कहा गया।

इस अवधि में दक्षिण भारत ने भी स्थानीय या क्षेत्रीय भाषाओं की उत्पत्ति और विकास को देखा। इनमें तमिल, कन्नड़, तेलुगु और मलयालम प्रमुख थीं। अन्य भाषाएँ जैसे तुलु, कोडगु, कोपटा, कुरुख,

माल्टो, गांडी, कुई, कुल्लामी, और ब्राहुई कुछ अन्य भाषाएँ थी जिनका विकास प्रमुख भाषाओं के अंतर्गत हुआ। भाषायी रूप में इन्हें तीन वर्गों में रखा गया है, द्रविड़, आंध्र और ब्राहुई। द्रविड़ भाषाओं में तमिल, तेलुगु और मलयालम तथा अन्य ऐसी छोटी भाषाएँ शामिल हैं जिनका स्रोत तमिल है। कन्नड़ आंध्र भाषा की प्रधान बोली है। ब्राहुई का विकास इन सबसे अलग हुआ है। परंतु इतिहासकार इन सभी भाषाओं को एक वर्ग में रखते हैं जो द्रविड़ कहलाती है।

दूसरा भाग : उत्तर भारतीय 'वर्नाक्यूलर' का आरंभिक विकास

संस्कृत जो कि भारत की सबसे प्राचीन 'वर्नाक्यूलर' भाषा थी 15वीं शताब्दी ई०पू० से 8वीं शताब्दी ई०पू० तक 'वेदिकी' के रूप में प्रचलित रही। इससे तीन क्षेत्रीय शाखाओं का विकास हुआ – उत्तर-पूर्वी, मध्य और पूर्वी वेदिकी। इसके उपरांत परिष्कृत संस्कृत भाषा का युग आरंभ हुआ जिसे 8वीं से 5वीं शताब्दी ई०पू० के बीच रखा जाता है। इस काल में परिष्कृत संस्कृत के अतिरिक्त 'वेदकी' के तीनों रूप भी साथ-साथ प्रचलित रहे। परंतु इस भाषा में अत्यंत जटिलताएँ और शास्त्रीयकरण आ जाने के कारण यह आम लोगों की साहित्यिक अभिव्यक्ति की भाषा नहीं रह गई। अत: 'वर्नाक्यूलर' भाषा के अगले चरण के विकास में संस्कृत भाषा दो भागों में विभक्त हो गई। एक ऐसी संस्कृत भाषा जिसका प्रयोग मुख्य रूप से उस काल के उच्च वर्ग के लोग भाषा रूप और लेखन में किया करते थे तथा दूसरी पाली थी जो अधिक सरल और जटिलताओं से रहित बोली और अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। इसका प्रयोग समाज के साधारण वर्ग ने किया। यह चरण 5वीं शताब्दी ई०पू० से पहली शताब्दी ईस्वी तक रहा। इस चरण में एक और क्षेत्रीय भाषा इसमें जुड़ गई जिसे 'दक्षिणी वेदिकी' कहा गया।

पाली धीरे-धीरे एक अधिक रूपांतरित बोली में परिवर्तित हुई जिसे प्राकृत कहा गया। प्राकृत का एक बोली के रूप में वर्चस्व पहली से 5वीं शताब्दी ईस्वी तक रहा। परंतु 5वीं से 10वीं शताब्दी ईस्वी के बीच प्राकृत ने चारों क्षेत्रीय भाषा रूपों जिनका उल्लेख उपर किया गया है से अपभ्रंश का विकास किया। इस कारण इस चरण या काल को अपभ्रंश का युग कहा गया। अंत में 10वीं शताब्दी ईस्वी से चार क्षेत्रीय अपभ्रंश से आधुनिक आधुनिक-आर्य भाषाओं का विकास होना आरंभ हुआ।

आइये हम संक्षेप में उत्तर भारतीय 'वर्नाक्यूलर' भाषाओं और इसके आदिप्ररुप का विश्लेषण करें। आधुनिक भारतीय-आर्य भाषाओं का उद्‌गम और विकास नीचे दी गई तालिका द्वारा समझा जा सकता है।

क्षेत्र	**प्राकृत 100-500 ईस्वी**	**अपभ्रंश 500-1000 ईस्वी**	**आधुनिक भारतीय-आर्य भाषाएँ 1000 ईस्वी-वर्तमान तक**
1.	सिंध	ब्रछाड़ (Brachada)	ब्रछाड़	सिंधी
2.	मुल्तान और आसपास के क्षेत्र	केका (Kekay)	केका	लेहंडा/मुल्तानी (पश्चिमी पंजाबी)
3.	आधुनिक पंजाब	टक्का	टक्का	पंजाबी
4.	मध्य प्रदेश	शौरसेनी	शौरसेनी	गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पहाड़ी
5.	अवध	अर्ध-मगधी	अर्ध-मगधी	पूर्वी हिंदी
6.	पूर्वी भारत	मगधी	मगधी	बिहारी, आसामी, बांग्ला और उड़िया
7.	महाराष्ट्र	महाराष्ट्री	महाराष्ट्री	मराठी

सौजन्य : भोलानाथ तिवारी, 'भारतीय भाषाओं का उद्‌भव और विकास', डॉ० नाग्रेंद्र (संपादित), 'भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास', हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1989, पृ० 79.

प्राकृत

प्राकृत भाषा संस्कृत से अलग एक बोली के रूप में वैदिक काल से उभरी। भगवान बुद्ध के समय तक आते-आते साधारण लोग इस भाषा को बोलने लगे जो संस्कृत की अपेक्षा अधिक सरल थी। धीरे-धीरे प्राकृत से संबंधित कई अन्य बोलियों का विकास हुआ जैसे पाली, मगधी, अर्ध-मगधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि। पाली आरंभिक प्राकृत के क्षेत्रीय रूपों में से एक है। सांची और उज्जैन के आसपास बोली जाने वाली यह भाषा स्थविरवादिन बौद्धों की भाषा बन गई। मगधी मौर्य दरबार की स्वीकृत भाषा थी। अशोक के अधिकतर अभिलेख इसी भाषा में लिखे गये। अर्ध-मगधी जो शायद मगधी और पश्चिमी प्राकृत के प्रभावों से विकसित हुई अंततः जैन भिक्षुओं की पवित्र भाषा बन गई।

शौरसेनी जो आरंभिक काल में पश्चिमी उत्तर प्रदेश की बोली थी उसका प्रयोग मुख्य रूप से नाट्य में स्त्रियों और निम्न वर्ग के प्रतिष्ठित लोगों की भाषा के रूप में किया जाता था। महाराष्ट्री उत्तर-पश्चिम दक्कन में बोली जाती थी। यह प्रधानतः साहित्यिक भाषा थी जिसमें विशेष रूप से लयात्मक गीतों की रचना की जाती थी।

1. अपभ्रंश

यह मुख्य रूप से पश्चिमी भारत की 'वर्नाक्यूलर' भाषा थी। इसकी कुछ विशिष्टता लेखक भास (तीसरी शताब्दी ईस्वी) की 'पंचतंत्र' में देखी जा सकती है। विद्वानों का मत है कि इसकी शुरुआत अश्वघोष रचित नाटक 'सरीपुत्रप्रकरण' के काल से देखी जा सकती है। विशाखदत्त की 'मुद्राराक्षस' भी इस भाषा से अवगत होने का आभास देती है। इसके लेखक विशाखदत्त इसे 'ढक्की' कहते हैं। इस भाषा का प्रयोग गुजरात और राजस्थान के जैन लेखकों ने अपनी कविताओं की रचना में किया।

2. सिंधी

सिंधी शब्द सिंध क्षेत्र से संबंधित है। भाषाविदों का विश्वास है कि इसका विकास 'सिद' या 'सिट' से हुआ जिसका प्रयोग बाद में सिंधु नदी और इसके आसपास के क्षेत्रों के संदर्भ में किया जाने लगा। जैसा कि तालिका से स्पष्ट है इसका आदिप्ररुप दोनों प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के काल में विद्यमान था। 10वीं शताब्दी ईस्वी से यह आधुनिक सिंधी में रूपांतरित होती चली गई। कुछ प्रारंभिक रचनाएँ जैसे भरत की नाट्यशास्त्र (लगभग दूसरी शताब्दी ईस्वी), चीनी यात्रा वृतांत (7वीं शताब्दी ईस्वी), और कुवालयमाला (8वीं शताब्दी ईस्वी) सिंधी भाषा का उल्लेख करते हैं। 14वीं शताब्दी ईस्वी से यह भाषा एक नियमित साहित्यिक माध्यम भी बन गई।

3. लेहंडा/मुल्तानी (पश्चिमी पंजाबी)

लेहंडा का शाब्दिक अर्थ है पश्चिम या सांयकाल। इसी कारण इसे 'पश्चिमी' भी कहा जाता है। यह पश्चिमी पंजाब (मुल्तान जो अब पाकिस्तान में है) की प्रमुख बोली के रूप में विकसित हुई। अबुल फज़ल अपनी 'आइने अकबरी' में इस भाषा को मुल्तानी शब्द से संबोधित करते हैं। तालिका से यह स्पष्ट है कि इसका विकास प्राकृत और अपभ्रंश चरण में इसके आदिप्ररुप-केका (ज़मांल) से हुआ।

4. पंजाबी

इस शब्द की व्युत्पत्ति फ़ारसी शब्द पंजाब से हुई है जिसका अर्थ है पांच नदियों वाला क्षेत्र (सतलज, रावी, ब्यास, चिनाव और झेलम)। अत: पंजाब शब्द प्रधान भाषा को संबोधित करता है जो इस क्षेत्र में विकसित हुई। तालिका से स्पष्ट है कि इसका विकास प्राकृत और अपभ्रंश चरणों में इसके आदिप्ररुप टक्का से हुआ है। 10वीं शताब्दी ईस्वी से यह अपने आधुनिक रूप में परिवर्तित होती चली गई। क्योंकि यह बोली प्रधानत: सिख समुदाय द्वारा बोली जाती है अत: इसे 'सिक्खी' या 'खालसी' भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त, इस भाषा के लिए एक अलग लिपि के प्रयोग के कारण 'गुरुमुखी' भी कहा जाता है।

5. गुजराती

गुजराती का विकास गुजरात शब्द से हुआ है जो 'गुर्जर' शब्द का रूपांतरण है। 'गुर्जर' भारत में 5वीं शताब्दी ईस्वी में आई शक प्रजाति की एक शाखा थी जिससे इस क्षेत्र का नाम गुजरात पड़ा। 10वीं शताब्दी ईस्वी से गुजरात शब्द एक क्षेत्र विशेष के लिए प्रयुक्त होने लगा जो माऊँट आबू के उत्तर और दक्षिण का क्षेत्र है। रोचक बात यह है कि गुजराती शब्द का भाषा के रूप में प्रयोग सर्वप्रथम 17वीं शताब्दी ईस्वी में प्रेमानंद (1649–1714) ने अपनी रचना 'दशम स्कंध' में किया। जैसा कि स्पष्ट है गुजराती का विकास प्राकृत और अपभ्रंश चरणों में शौरसेनी से हुआ। गुजराती साहित्य का विकास 12वीं शताब्दी ईस्वी से माना जाता है।

6. राजस्थानी

गुजराती भाषा की ही भाँति इसका विकास भी प्राकृत और अपभ्रंश चरणों की शौरसेनी से हुआ है। भाषाविदों का ऐसा विश्वास है कि प्रारंभिक राजस्थानी आधुनिक हिंदी की बोलियों में से ही एक थी। उनके अनुसार कई पहाड़ी बोलियाँ जैसे हिमाचली, कुमाउनी, गढ़वाली आदि का प्रारंभिक विकास राजस्थान के लोगों द्वारा किया गया जो इन क्षेत्रों में आकर बसे।

7. हिंदी

अपने वर्तमान रूप में हिंदी 18 बोलियों का समूह है। इसका प्रारंभिक विकास प्रधानत: दो रूपों में देखा जा सकता है – पश्चिमी हिंदी (गुजराती और राजस्थानी रूप) और पूर्वी हिंदी (बंगाली, आसामी और उड़िया के विभिन्न रूप)। इसका विकास पहाड़ी हिंदी के रूप में भी हुआ जिसमें नेपाली इस समूह की प्रधान भाषा थी।

18 बोलियों में तीन बोलियाँ – खड़ी बोली, ब्रज भाषा और अवधी – विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनका उल्लेख प्रशंसनीय साहित्य लेखन के परिप्रेक्ष्य से भी महत्त्वपूर्ण है जिसका इन्होंने विकास किया और इस प्रकार आधुनिक हिंदी के विकास में अत्यधिक योगदान दिया। खड़ी बोली का आरंभ पहली शताब्दी ईस्वी से एक स्थानीय बोली 'कौरवी' से हुआ जो विशेष रूप से मेरठ और इसके आसपास के क्षेत्रों में बोली जाती थी। इसमें अन्य बोलियों जैसे बांग्ला, पंजाबी, ब्रज आदि के तत्त्व भी मूल या रूपांतरित रूप में देखे जा सकते हैं। कुछ प्रसिद्ध साहित्य से संबंधित विभुतियाँ जैसे गोरखनाथ, अमीर खुसरो, रामानंद, कबीर, रैदास और नामदेव आदि ने खड़ी बोली का अत्यधिक प्रयोग किया।

ब्रजभाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से भी हुआ है। 'ब्रज' का शाब्दिक अर्थ है 'चरागाह क्षेत्र' जो पश्चिम गंगा–यमुना दोआब का क्षेत्र है। अत: जिस भाषा का यहाँ विकास हुआ वह भी इसी क्षेत्र के

नाम के रूप में प्रचलित हुई। इस भाषा के प्रारंभिक काल की कुछ उत्तम कृतियाँ सूरदास, नंददास, नरोत्तमदास, नाभादास, केशवदास, रसखान, बिहारी, भूषण, देव, घनानंद आदि के लेखन में देखी जा सकती हैं।

अवधी जिसे पूर्वी हिंदी के नाम से भी जाना जाता है का उद्‌भव 'कोशली' से हुआ जो कोशल (छठी शताब्दी ई०पू० के 16 महाजनपदों में से एक) प्रदेश की स्थानीय बोली थी। परंपरा के अनुसार इसका उद्‌भव अर्ध-मगधी से माना जाता है। अवधी के प्राचीनतम साक्ष्य अभिलेखों के समूह से मिलते हैं जो 200 ई०पू० से पहली शताब्दी ईस्वी के हैं। इस संदर्भ में सोहगरा, सारनाथ, रुमनीदेई, खैरगढ़ आदि के अभिलेख उल्लेखनीय हैं। हेमचंद्र, मलिक मोहम्मद जायसी, कबीर, तुलसीदास आदि कुछ प्रसिद्ध विभुतियाँ थीं जिन्होंने अपने लेखन में अवधी का प्रयोग किया।

8. बांग्ला (बंगाली)

व्युत्पत्ति रूप में देखें तो बंगाली शब्द 'बंग' से आया है जो बंगाल का प्राचीन नाम है। इसका विकास पूर्वी मगधी से हुआ है। बंगाली को कई अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे 'गौड़ी', 'प्राकृत', 'मगधी', 'गौली' आदि। 8वीं शताब्दी ईस्वी के ग्रंथ 'कुवालयमाला' में इसे 'गौली' कहा गया है। आधुनिक बांग्ला का विकास 10वीं शताब्दी इस्वी से हुआ है। 12वीं शताब्दी ईस्वी से यह भाषा साहित्यिक रचनाओं का माध्यम भी बन गई।

9. आसामी

आसामी भाषा असम राज्य की मुख्य बोली है। ऐसा विश्वास है कि असम नाम (पहले यह प्रागज्योतिषपुर और कामरुप के नाम से भी जाना जाता था) की उत्पत्ति मध्यकाल में अहोम शासकों द्वारा राज्य स्थापना के उपरांत हुई। अहोम से असम शब्द का विकास हुआ है। असम शब्द से ही इस क्षेत्र की प्रमुख बोली विकसित हुई। आसामी भाषा का उद्‌भव मगधी के उत्तर पूर्वी अपभ्रंश से हुआ है। इस भाषा में लेखन के प्राचीनतम साक्ष्य हेम सरस्वती की 'प्रहलाद चरित' से मिलते हैं।

10. उड़िया

इसका विकास मगधी के दक्षिणी अपभ्रंश से हुआ है। उड़ीसा तथा बंगाल, आंध्रप्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों की यह प्रमुख बोली है। इसे 'उड़िया', 'उत्कली' और 'ओड्री' के नाम से भी जाना जाता है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में इसे 'उड्रा' (Udra) कहा गया है। आधुनिक भाषा के रूप में इसके प्रयोग का प्रथम साक्ष्य अनंतवर्मन के उरगाम (Urgama) अभिलेख (105 ईस्वी) से मिलता है।

11. कश्मीरी

भाषाविदों का ऐसा विश्वास है कि आर्यों के साथ-साथ हिंद-यूरोपीय परिवार की एक अन्य उप-शाखा भी चित्राल (Chitral) नामक स्थान से भारत आई और कश्मीर तथा इसके आसपास के क्षेत्रों गिलगीट और दर्दीस्तान में बस गई। इन विद्वानों के अनुसार कश्मीरी भाषा का विकास 'दरद पैशाची' से हुआ जो कि इस क्षेत्र की विकसित भाषा थी। 'दरद पैशाची' से 'प्राकृत पैशाची' का विकास हुआ जिसके विकास का अगला चरण 'पैशाची अपभ्रंश' था। अतंत: 12वीं शताब्दी ईस्वी से आधुनिक कश्मीरी का विकास आरंभ हुआ।

12. मराठी

इस शब्द का विकास मूल शब्द महाराष्ट्री से हुआ है। यह आधुनिक महाराष्ट्र की पहली से दसवीं शताब्दी ईस्वी में प्राकृत और अपभ्रश रूपों की प्रमुख बोली थी। मराठी का भाषायी रूप में सर्वप्रथम उल्लेख 'कुवालयमाला' में किया गया है। इसके उपरांत इसने लगभग 39 बोलियों और उप-बोलियों का विकास किया। कोंकणी संभवत: इनमें से महत्त्वपूर्ण बोलियों में से एक है, हालांकि हाल के वर्षों में इसने एक स्वतंत्र भाषा का दर्जा प्राप्त कर लिया है। एक साहित्यिक रचनाओं की भाषा के रूप में मराठी का विकास 12वीं शताब्दी से हुआ।

तीसरा भाग : दक्षिण भारतीय 'वर्नाक्यूलर' भाषाओं का उत्थान और विकास

जैसा पहले ही उल्लेख किया गया है दक्षिण भारतीय 'वर्नाक्यूलर' भाषाओं में तमिल, कन्नड़, तेलुगु और मलयालम तथा कई अन्य गौण बोलियाँ शामिल हैं। तमिल मुख्य रूप से कन्याकुमारी से चित्तूर क्षेत्र में बोली जाती है कन्नड़, मैसूर और हैदाराबाद के हिस्सों में तेलुगु चेन्नई से उत्तर की ओर उड़ीसा के सीमावर्ती क्षेत्रों में, तथा मलयालम मलाबार (केरला) में बोली जाती है।

1. तमिल

तमिल द्रविड़ भाषाओं में सर्वाधिक प्राचीन है। वास्तविक रूप में तमिल शब्द इस भाषा की मिठास संबंधी गुणों का प्रतीक है। इसे 'उर्वा' या 'मलाबार' भी कहा जाता है। ईसा की आरंभिक सदियों में तीन संगम में जो साहित्य लिखा गया है वह तमिल में सर्वप्रथम लिखा गया वृहत साहित्य है। 'तोलक्कापियम' (दूसरी शताब्दी ईस्वी) जो कि एक व्याकरण ग्रंथ है तमिल का एक व्यवस्थित भाषा के रूप में वर्णन करता है। जैसा कि पहले ही बताया गया है कि इस अध्याय में इसका अधिक विवरण नहीं है जिसका कारण पहले ही दे दिया गया है।

2. कन्नड़

इसे 'कर्नट', 'कर्नाटकी', 'कन्नाड़ी', 'कनारी', 'केनारा' आदि नाम से भी जाना जाता है। कुछ प्रारंभिक ग्रंथ जैसे महाभारत और गुनाध्या की पैशाची वृहतकथा उपर्युक्त लिखे कुछ नामों का वर्णन करती है। कन्नड़ शब्द की व्युत्पत्ति पर विवाद है। इसे 'काली मिट्टी', 'खुशबु' वाले क्षेत्र के रूप में भी जाना जाता है। कन्नड़ के सर्वाधिक प्रारंभिक साक्ष्य गद्य रूप में हालमीडी नामक स्थान से चट्टान अभिलेख में मिलते हैं।

3. तेलुगु

भाषाविदों के अनुसार तेलुगु की व्युत्पत्ति आंध्र समहू की बोलियों से हुई है। आंध्र शब्द का वणर्न कबीले के संदर्भ में कुछ प्रारंभिक ग्रंथों जैसे रामायण और महाभारत में आया है। तेलुगु शब्द के स्रोत पर भी विद्वानों में विवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार तेलुगु शब्द का उद्‌भव 'त्रिलिंग' से हुआ है जिसका अर्थ तीन पहाड़ी हैं - कालेश्वर, श्रीशेला और मीमेश्वरा। ये तीनों पहाड़ियाँ आंध्र प्रदेश की सीमा निर्धारित करती हैं। अन्य विद्वानों के अनुसार यह तेलुगु शब्द का रूपांतरित रूप है जिसका वास्तविक अर्थ है दक्षिण की भाषा। तेलुगु का प्राचीनतम प्रयोग 7वीं शताब्दी के इस क्षेत्र के चट्टान अभिलेख में मिलता है। इस भाषा में नियमित साहित्यिक रचना की शरु आत 12वीं शताब्दी से ही शुरु हुई।

4. मलयालम

आरंभ में मलयालम एक लंबे समय तक तमिल का अभिन्न हिस्सा रही। यह चौथी शताब्दी ईस्वी से तमिल से पृथक रूप में विकसित हुई। मलयालम का शाब्दिक अर्थ है पहाड़ी क्षेत्र। मलयालम के कई शब्द अभी भी मूल तमिल से संबद्ध हैं। दक्षिण भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में यह मलयालम ही है जिसमें साहित्यिक गतिविधियाँ सबसे आखिरी में आरंभ हुई।

अभ्यास-6

(अ) निम्नलिखित के लिए 'सही' या 'गलत' बताईये:

(i) विशाखदत्त की मुद्राराक्षस अपभ्रंश की जानकारी प्रस्तुत करती है।

(ii) भरत की नाट्यशास्त्र सिंधी का उल्लेख करती है।

(iii) मराठी का एक भाषा के रूप में सर्वप्रथम उल्लेख कुवालयमाला में आता है।

(iv) तमिल द्रविड़ भाषाओं में सबसे पुरानी है।

(v) मलयालम का शब्दिक अर्थ है तटीय क्षेत्र।

(ब) 1. निम्नलिखित में से मौर्य दरबार की भाषा कौन सी है :

(अ) शौरसेनी (ब) मगधी

(स) महाराष्ट्री (च) पाली

2. इनमें से किस भाषा को अबुल फज़ल ने आइने अकबरी में मुल्तानी कहा है :

(अ) सिंधी (ब) हिंदी

(स) लेहंडा (च) गुजराती

3. इनमें से कौन सी भाषा कौरवी से संबंधित है जो कि मेरठ की स्थानीय बोली है?

(अ) खड़ी बोली (ब) ब्रजभाषा

(स) अवधी (च) आधुनिक हिंदी

4. निम्नलिखित में कौन सी 'दरद पैशाची' का स्रोत है?

(अ) मराठी (ब) कश्मीरी

(स) उड़िया (च) बांग्ला

5. निम्नलिखित में किस दक्षिण भारतीय भाषा में सबसे अंत में साहित्यिक गतिविधियाँ शुरु हुई?

(अ) तेलुगु (ब) कन्नड़

(स) मलयालम (च) तमिल

2.5.2 वर्नाक्यूलर साहित्य का विकास : एक सर्वेक्षण

भारतीय वर्नाक्यूलर भाषा के उद्भव और प्रारंभिक विकास की विवेचना के उपरांत यह आवश्यक हो जाता है कि हम इन भाषाओं में प्रमुख लेखकों द्वारा की गई साहित्यिक अधिवृद्धि का भी अध्ययन करें। काव्य रूप में विकसित होने वाली 'वर्नाक्यूलर' भाषाओं ने मुख्यत: दो अलग-अलग धाराओं को प्रकट किया है - धार्मिक और गैर-धार्मिक। धार्मिक साहित्य में मुख्य रूप से ऐसी रचनाएँ हैं जो अन्य शास्त्रीय भाषाओं ज्यादातर संस्कृत की अनुवाद हैं या उनका रूपांतरण हैं। भारत की लगभग सभी

वर्नाक्यूलर भाषाओं में प्रारंभिक काव्य रचनाओं के मुख्य विषय वस्तु धार्मिक और अलौकिक या आध्यात्मिक (Mystical) रहे हैं। इसका मुख्य कारण मध्यकाल में समाज और धर्म सुधार आंदोलनों का प्रभाव रहा है। भक्ति और सूफी आंदोलन ने इस काल में पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को प्रभावित किया था। भक्त और सूफी संत साधारण वर्ग के लोगों के बीच रहा करते थे और यही उनका कार्यक्षेत्र भी हुआ करता था। उन्हें अधिक से अधिक लोगों की आवश्यकता थी जिससे वे सामाजिक-धार्मिक और दर्शन संबंधी संदेश को आम लोगों तक पहुँचा सकें। अतः उन्होंने अपने उपदेशों और लेखन के अधिक से अधिक प्रभाव के लिए स्थानीय भाषाओं को चुना जिस कारण स्थानीय भाषाओं के विकास और लोकप्रियता में अत्यधिक मदद मिली। गैर-धार्मिक रचनाएँ भी दो रुझानों को प्रकट करती हैं - पहला काव्य संकलन जो मुख्य रुप से व्याकरण और लेखन शैली से संबंधित है, तथा दूसरा, विज्ञान और गणितीय विषयों का अनुवाद या इन विषयों पर मौलिक लेखन।

भारतीय वर्नाक्यूलर के मध्यकालीन साहित्य को दरबारी सरंक्षण से भी महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। इस दरबारी संरक्षण के अंतर्गत कई प्रतिभावान कवियों और लेखकों को दान और उपहार द्वारा स्थानीय भाषा में लेखन के लिए प्रोत्साहित किया गया। उदाहरण के लिए, तेलुगु को विजयनगर के शासक कृष्णदेव राय ने अत्यधिक समर्थन दिया जिनके दरबार की 'अष्ट-दिग्गज' (तेलुगु के आठ विद्वान) शोभा बढ़ाते थे। इसी प्रकार भारत की अन्य वर्नाक्यूलर भाषाओं को भी शाही संरक्षण प्राप्त हुआ।

इसके आधुनिक रूप में, भारत की लगभग सभी वर्नाक्यूलर भाषाओं में अनेक प्रकार की गद्य रचनाएँ की गई जिसमें दीर्घ निबंध, उपन्यास, लघु कहानियाँ, नाट्य, समाचारपत्र, मासिक पत्रिका आदि शामिल हैं। पर काव्य अभी भी साहित्यिक रचनाओं का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। काव्य से संबंधित अनेक तत्त्वों ने आज अपने में आधुनिक काल की काव्य परंपरा को समाहित कर लिया है। चाहे गद्य हो या पद्य, भारत में सभी वर्नाक्यूलर लेखन पर आधुनिक काल की ऐतिहासिक घटनाओं का प्रभाव रहा है। इस प्रकार साधारण रूप में यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों का आविर्भाव और विशेष रूप में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का उदय, विभिन्न ईसाई मिशनरियों की देश के विभिन्न क्षेत्रों में गतिविधियाँ, स्वतन्त्रता आंदोलन की गतिविधियाँ, आधुनिक सामाजिक-धार्मिक बुद्धिजीवी वर्ग का उदय आदि ने भारतीय वर्नाक्यूलर भाषाओं को अत्यधिक प्रभावित किया और इसके विविध विकास में अहम योगदान दिया।
आइये हम भारत की प्रमुख वर्नाक्यूलर भाषाओं का सर्वेक्षण करें।

1. पाली

इस शब्द का मूल रूप में अर्थ 'एकश्रृंखला' या 'एक रेखा' था। परंतु बाद में इसे भगवान बुद्ध के पवित्र शब्दों तथा बौद्ध ग्रंथों जिनमें बुद्ध की शिक्षाएँ थीं उनसे जोड़ कर देखा जाने लगा।

पाली की महत्वत्ता बौद्ध ग्रंथों की भाषा के रूप में है। अतः यह प्रस्तुत है कि पाली साहित्य का विकास मुख्य रूप से स्थविरवादिन बौद्ध शिक्षाओं और आचार संहिता के इर्दगिर्द हुआ।

आज इस भाषा में धर्मग्रंथ, टीका और अर्ध धर्मवैधानिक (Semi-Canonical) रचनाएँ शामिल हैं। यह तीन भागों में विभक्त है जिसे पिटक (टोकरी) कहा जाता है - विनय (आचार), सुत्त (शिक्षाएँ) और अभिधम्म पिटक (rÙoehekalk)।

विनयपिटक में बुद्ध के उपदेश हैं जिसमें भिक्षु संघ से संबंधित आचारसंहिता के नियम भी दिये गये हैं। प्रत्येक नियम के साथ बुद्ध ने किस घटना पर ये नियम स्थापित किये इसका भी विवरण हौ सुत्त पिटक सबसे बड़ा और सभी पिटकों में सबसे महत्त्वपूर्ण पिटक है।

इसमें पाँच निकाय (अध्याय) हैं -

(i) दीर्घ (दीर्घ) निकाय - इसमें बुद्ध की विस्तृत शिक्षाएँ हैं।

(ii) मज्जिम (मध्य) निकाय - बुद्ध की लघु शिक्षाएँ इसमें शामिल हैं।

(iii) समयुक्त (जुड़े) निकाय - इसमें छोटे-छोटे उवाच हैं जो अनेक विषयों से संबंधित हैं।

(iv) अंगुत्तर (स्नातक) निकाय - इसमें 2000 से अधिक संक्षिप्त वक्तव्यों का संग्रह है जिसे 11 खंडों में विभिन्न विषयों के आधार पर बांटा गया है।

(v) खुदक्का (गौण) निकाय - यह गद्य और पद्य में अनेक विषयों पर लेख है। उदाहरण के लिए धम्मपद, थेरगाथा और थेरीगाथा और जातक कथाएँ तथा 500 से अधिक कविताएँ आदि इस निकाय में हैं।

तीसरा पिटक कई रचनाओं का रूप है जो बौद्ध तत्त्वमीमांसा या अलौकिक संसार से संबंधित है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण रचना कथावत्थु (Kathavatthu) है जो तिस्सा मोगलीपुत्त (एक बौद्ध भिक्षु जिन्होंने पाटलिपुत्र में आयोजित तीसरी बौद्ध संगीति की अध्यक्षता की) की कृति मानी जाती है। अर्ध-धर्मवेधानिक रचनाओं में पाली की प्रमुख रचना 'मिलिंदपान्हो' है। यह ग्रीक-बैक्ट्रिया राजा मिनेनंडर और बौद्ध भिक्षु नागसेन के बीच हुए संवाद का आख्यान है। इसके अतिरिक्त पद्य आख्यान जैसे दीपवंश, महावंश और चूलवंश अन्य प्रसिद्ध पाली ग्रंथ हैं। ये इतिहास रचनाएँ न केवल श्रीलंका में बौद्ध धर्म के इतिहास के प्रस्तुत करती हैं बल्कि वहाँ के राजनैतिक और सामाजिक स्थिति पर भी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती हैं।

2. प्राकृत

प्राचीन काल से पहली शताब्दी ईस्वी तक अभिलेख केवल प्राकृत में ही लिखे जाते थे। इनमें अशोक के अभिलेख सबसे प्रमुख हैं। कालांतर में इस भाषा में कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गए।

जैन वैधानिक रचनाएँ प्राकृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। महावीर की शिक्षाओं को चौथी शताब्दी ई०पू० में पाटलीपुत्र में सर्वप्रथम व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया। पर उन्हें अतत: पांचवी शताब्दी ईस्वी में गुजरात के वल्लभी में लिखित रूप दिया गया। ये रचनाएँ अर्धमागधी भाषा में लिखी गईं। जैन धर्म के कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं - 'आचरंग सूत्र' जो संघ नियमों से संबंधित है, 'नयाधम्मकहा' जो कि महावीर की शिक्षाओं का संकलन है तथा 'भगवतीसूत्र' जो महावीर के जीवन पर प्रकाश डालता है। इस सूची में इस प्रकार के 12 ग्रंथ शामिल हैं जिन्हें 'अंग' कहा जाता है। प्रत्येक 'अंग' में एक उपांग है। बाद में इन 'अंग' 'उपांग' पर कई टीके भी लिखे गए।

प्राकृत में कई अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ भी की गईं। उदाहरण के लिए प्रवरसेन की 'सेतुबन्ध' प्राकृत की एक महत्त्वपूर्ण कविता है जिसमें राम के लंका अभियान का विवरण है। इसी प्रकार 8वीं शताब्दी के कवि वाकपति की गौड़-वाहो एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्राकृत रचना है जिसमें कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा यशोवर्धन की विजयों का उल्लेख है। इस भाषा में कुछ नाट्य भी लिखे गए जिन्हें 'सतक' कहा जाता था। 10वीं शताब्दी में राजेश्वर द्वारा रचित 'करपुरामंजरी' इस प्रकार की प्राकृत भाषा में उल्लेखनीय रचना है। इसके अतिरिक्त इस भाषा में कई ऐसे संकलन भी हैं जिसमें प्रेम संबंधी विविध तत्त्वों की भरमार है। सातवाहन राजा हल की 'गाथासप्तशती' जिसमें प्रेम संबंधी लगभग 700 गाथाएँ हैं तथा जो दक्षिण भारतीय ग्रामीण जीवन के विविध पहलुओं को प्रस्तुत करती है इस प्रकार की प्राकृत रचनाओं का ज्वलंत उदाहरण है। गुनाध्या की वृहतकथा प्राकृत में लिखी गई एक आख्यानात्मक साहित्य

है। विज्ञान संबंधी रचनाओं में धनपद की 'पैयालछिन्ममाला' (972-73 ईस्वी) और हेमचंद्र की 'देशीनाममाल' प्राकृत की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचनाएँ हैं।

3. अपभ्रंश

जैसा हमने पहले उल्लेख किया कि इस भाषा की शुरुआत पहली शताब्दी ईस्वी से देखी जा सकती है। पर 10वीं शताब्दी ईस्वी से जैन और बौद्ध भिक्षु लेखकों ने अपने लेखन के लिए इस भाषा के माध्यम का प्रयोग करना आरंभ किया। दोहा जो कि इस भाषा कि एक विशिष्ट प्रकार की शैली थी को धार्मिक और दार्शनिक विचारों को सशक्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए अपनाया गया।

ज्वाईंदु की 'परमात्मा प्रकाश' और 'योगसार' तथा 10वीं शताब्दी में रामसिंह की 'पाहुदा दोहा' और शुभाचार्य की 'वैराग्यसार' अपभ्रंश में रचित प्रमुख जैन ग्रंथ है। इसके अतिरिक्त नैतिकता, आचार, धर्म, किवंदतियाँ आदि विषयों पर भी इस भाषा में कविताओं की रचना की गई। 14वीं शताब्दी में विद्यापति द्वारा रचित 'कीर्तिलता' अपभ्रंश की एक अन्य बड़ी रचना है।

आधुनिक हिंद-आर्य (Indo-Aryan) वर्नाक्यूलर साहित्य

(i) आसामी

आसामी के सर्वाधिक प्रारंभिक साक्ष्य 8वीं शताब्दी के बौद्ध धर्म से संबंधित सिद्ध संप्रदाय के लेखन में देखे जा सकते हैं। पर साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में इस भाषा का विकास 12वीं शताब्दी ईस्वी से हुआ। आरंभिक लेखन मुख्यतः संस्कृत रचनाओं जैसे महाभारत, रामायण, भगवद्गीता आदि का अनुदित रूप था। हेम सरस्वती की 'प्रहलाद्चरित' और 'हर-गौरी संवाद', हरिहर विप्र की 'बब्रुवहानर युद्ध' और 'लवकुश युद्ध' आसामी की कुछ बड़ी रचनाएँ हैं। माधव कांडली और कविरथ सरस्वती इस काल की कुछ अन्य प्रसिद्ध विभूतियाँ थीं। बाद में भी इस प्रकार की धार्मिक रचनाएँ आसामी में लिखी जाती रहीं या संस्कृत से आसामी में अनुदित होती रहीं। कविराज चक्रवर्ती की 'ब्रह्मवैर्वत पूर्भ' (c.17th AD) इस संदर्भ में उल्लेखनीय उदाहरण है। इसी प्रकार गोपाल चंद्र द्विज (c. 17th AD) ने विष्णु पुराण, भागवत पुराण और हरिवंश का आसामी में अनुवाद किया। भगवद्गीता का भट्टदेव ने इस भाषा में अनुदित किया।

कुछ गैर-धार्मिक रचनाओं का भी आसामी में अनुवाद किया गया। इनमें मुख्य रूप से प्रेम काव्य हैं जैसे 'मृगवती चरित', 'माधव-सुलोचना' और 'शकुंतला-काव्य'। इसके अतिरिक्त चिकित्सा शास्त्र, खगोलशास्त्र, गणित, व्याकरण, स्थापत्य, कला आदि से संबंधित संस्कृत रचनाओं का भी आसामी में अनुवाद किया गया।

पंद्रहवी और सोलहवीं शताब्दी में संपूर्ण असाम वैष्णव भक्ति आंदोलन के प्रभाव में आया। शंकरदेव (1459-1469) और माधवदेव (1489-1596) आसामी वैष्णव आंदोलन के प्रमुख स्तंभ साबित हुए। इन्होंने आसामी साहित्य के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। शंकरदेव की 'कीर्तन-घोष' को असामी वैष्णव साहित्य की बाईबल माना जाता है। इसमें भक्ति गीतों का संकलन है। माधवदेव की राजसूय पांडवों द्वारा दी गई व्यवस्थित आहुतियों का आख्यान है (यह महाभारत का एक प्रकरण है)।

16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आसामी काव्य में एक नये रूप का उत्थान हुआ जिसे 'चरितपुथी' कहा गया। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखी गई 'कथा गुरु चरित' जो शंकरदेव और माधवदेव की जीवनी है 'चरितुपुथी' शैली की एक बड़ी रचना है।

आसामी गद्य के विकास की शुरुआत 16वीं शताब्दी से हुई। शंकरदेव कवि होने के साथ-साथ एक नाटककार, अभिनेता और एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ भी थे। उन्होंने कई ऐसे एकल नाटक लिखे जो संवादों और गीतों का मिश्रित रूप थे। इसे आसाम में 'अंकिया नट' कहते हैं। भट्टदेव (1558-1638) ने भगवद्गीता का गद्य रूप में आसामी में अनुवाद किया। बुरंजी साहित्य जो कि अहोम दरबार का इतिहास प्रस्तुत करता था इस काल में प्रमुख गद्य साहित्य के रूप में विकसित हुआ। इसमें कर और न्याय संबंधी विवरण तथा राज्य स्तर के पत्राचार शामिल थे। प्रभावशाली वैष्णव आंदोलन के अतिरिक्त, दरबारी संरक्षण जो इस काल की प्रसिद्ध साहित्यिक विभुतियों को प्रदान किया गया आसामी साहित्य के प्रवर्धन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण था। प्रसिद्ध लेखक हेम सरस्वती दुर्लभ नारायण के दरबार में थे जो 13वीं शताब्दी के आरंभ में पश्चिम आसम के राजा थे। माधव कांडली को महामाणिक्य का संरक्षण प्राप्त था जो चाचर के राजा थे। इसी प्रकार अहोम राजाओं ने भी 16वीं से 18वीं शताब्दी के बीच विशिष्ट आसामी कवियों और लेखकों को संरक्षण प्रदान किया।

आसामी साहित्य का आधुनिक काल 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश सरकार द्वारा आसाम पर शासन स्थापना के साथ शुरु हुआ। इसी के साथ बड़ी संख्या में अमरीकी ईसाई मिशनरीयों जैसे N. Brown, T. Cotter, M. Brwson, W.M. Ward आदि आसाम आये और बसे। ईसा मसीह की शिक्षाओं के प्रसार हेतु उन्होंने स्थानीय भाषा सीखी और इस प्रकार आसामी में भारी संख्या में प्रकाशन आरंभ किया। अरुणोदय जो आसामी की एक मासिक पत्रिका थी उसकी शुरुआत 1846 में की गई।

आसामी व्याकरण, शब्दकोष, पत्रिकाएँ आदि भारी मात्रा में आसामी भाषा में प्रकाशित की गई। हेमचंद्र बरुआ की 'हेमकोश' एक महत्त्वपूर्ण आंग्ल-आसामी शब्दकोश थी जिसका इस काल में प्रकाशन किया गया। 'जोनाकी' (Jonaki) एक अन्य आसामी पत्रिका थी जिसका प्रकाशन कलकत्ता से कुछ आसामियों द्वारा 1889 में आरंभ किया गया।

हाल के सौ वर्ष आसामी साहित्य के क्षेत्र में अत्यधिक सक्रियता के वर्ष रहे हैं। पुराने 'नाटक' रुपों का स्थान अब 'ड्रामा' ने ले लिया है। इसी प्रकार पुराने काव्य रूप का स्थान नई काव्य शैली ने ले लिया है जिस पर अंग्रेजी रोमांचक तत्त्वों का प्रभाव है। रजनी बारदोली (उपन्यासकार), बी.के. काकाती (निबंध लेखक), एल.एन. बेज़बरुआ और हेम गुसाईं (कवि), हेमचंद्र और गुण भीरैन बरुआ (नाटककार) अनेक रूपों में आसामी साहित्य के विकास में अमूल्य योगदान दे रहे हैं।

(ii) बंगाली

बंगाली साहित्य का उद्भव 10वीं से 12वीं शताब्दी के बीच बौद्धधर्म के सहज संप्रदाय के लोगों द्वारा लिखे गये 'चार्यपद' (लोकगीत) से देखा जा सकता है। इसके उपरांत 14वीं से 18वीं शताब्दी में बंगाली का मध्यकालीन चरण आरंभ हुआ जिसमें बंगाली साहित्य समृद्ध हुआ। इस काल में तीन रुझान देखे जा सकते हैं - (1) वैष्णव काव्य (2) शास्त्रीय संस्कृत रचनाओं का अनुवाद और रुपांतरण (3) मंगल काव्य।

इस परिप्रेक्ष्य से 18वीं शताब्दी को बंगाली साहित्य के अवसान का काल कहा जाता है। इस काल में बंगाली साहित्य में पहले जैसी ताजगी और ओज की कमी आई। परन्तु इसके उपरांत अंग्रेजों का बंगाल पर शासन, अंग्रजी प्रशासन की स्थापना, अंग्रजी शिक्षा की शुरुआत और बंगालियों पर इसका प्रभाव और ईसाई मिशनरियों की बंगाल में गतिविधियाँ आदि कुछ महत्त्वपूर्ण कारक थे जिन्होंने बंगाली

साहित्य का आधुनिक काल में पर्दापण किया। इसकी अभिव्यक्ति नये काल के काव्य, नाटक, उपन्यास, लघु-कहानियाँ पत्रिका आदि में हुई।

चंडीदास (15वीं शताब्दी ईस्वी) बंगाल के वैष्णव कवियों में प्रथम थे। उनकी अनेक भक्ति-आधारित रचनाओं ने आगें आने वाले भक्त कवियों और उनकी साहित्यिक रचनाओं को अत्यंत प्रभावित किया। इसी प्रकार का प्रभाव विद्यापति का भी था। हालांकि उनकी अपनी भाषा मैथिली थी, परंतु वे बंगाल में भी अत्यधिक लोकप्रिय थी। बंगाल वैष्णव आंदोलन और मध्यकालीन बंगाली साहित्य के प्रधान केंद्रबिंदु श्री चैतन्य महाप्रभु (1486-1533) थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक भजनों का संकलन किया और उनकी गतिविधियाँ आगे की सदियों के लिए बंगाली वैष्णव साहित्य का केंद्रबिंदु बनी।

इसके अतिरिक्त कई अन्य कवियों जैसे मुरारीगुप्त, नरहरी सरकार, रामानंद बासु, शेखर आदि ने अत्यंत उत्कृष्ट काव्य-कविताएँ लिखीं। कई जीवनी संबंधी आख्यान भी लिखे गये जिसमें कृष्णदास कविराज की 'चैतन्यमृतम' एक प्रसिद्ध रचना मानी जाती है।

कई संस्कृत रचनाओं का बंगाली में अनुवाद किया गया या उनका इस भाषा में रूपांतरण हुआ। कृतिवास ओझा ने रामायण का बंगाली अनुवाद प्रस्तुत किया। इसी प्रकार, कांशीराम ने महाभारत का बंगाली अनुवाद किया। मालाधर बासु गुणराज खान ने प्रसिद्ध 'श्रीकृष्णविजय' की रचना की जो वास्तव में संस्कृत रचना भागवत पुराण का बंगाली रुपांतरण है।

मंगल काव्य मध्यकालीन बंगाल की एक अनूठी काव्य शैली थी। इसकी विाशेषता यह थी कि यह आम लोगों के जीवन से संबद्ध थी। इस प्रकार के आख्यान काफी बड़ी संख्या में लिखे गये। मणिकदया और मुकुंदराम बंगाली साहित्य में इस विधा के प्रसिद्ध रचियता थे।

आधुनिक बंगाली साहित्य सांख्यिकी और साहित्यक विविधता दोनों में ही विकसित हो रहा है। साहित्यिक विविधता में नये युग की काव्य और गद्य शैली शामिल हैं। गद्य का नये रूपों जैसे ड्रामा, उपन्यास, समाचार-पत्र, मासिक पत्रिका आदि रूपों में प्रवर्धन हुआ। माइकल मधुसुदन दास (1824-1873) इस युग के एक जाने-माने कवि थे जिनकी लोकप्रिय कृति 'मेघनादवध' नये काल के काव्य का प्रस्तुतीकरण है। बंगाली गद्य की आरंभिक रचनाएँ एक ईसाई मिशनरी विलियम कैरे (William Carey) (1761-1834) और उनके कुछ समकालीन विभुतियों जैसे रामराम बासु और मृत्युंजय विद्यालंकार द्वारा की गईं।

श्रीरामपुर के ईसाई मिशनरियों ने पहला बंगाली समाचार पत्र 'समाचार दर्पण' का एक साप्ताहिक पत्रिका के रूप में 1818 में प्रकाशन आरंभ किया। राजा राम मोहन रॉय इस काल के एक प्रसिद्ध विभुति थे जिनकी 'वेदांतग्रंथ' जो 1815 में लिखी गई आरंभिक बंगाली गद्य साहित्य की संभवत सबसे उत्कृष्ट रचना है। ईश्वर चंद विद्यासागर ने अपने गद्य लेखन से बंगाली साहित्य की इतनी अधिवृद्धि की कि उन्हें बंगाली गद्य साहित्य का जनक कहा जाता है।

आखिरी के सौ वर्षों में आधुनिक बंगाली साहित्य को हर विधा में नई ऊँचाईयों तक पहुँचाया गया है। इस काल ने बंगाली साहित्य को कई प्रतिभाशाली विभुतियाँ दी हैं।

बंकिम चंद्र चटर्जी (1838-1894) ने कई अनुपम कृतियाँ जैसे 'आनंदमठ', 'देवी चौधरानी' आदि लिखी ओर आधुनिक बंगाली कथा-साहित्य के एक प्रतिभाशाली लेखक के रूप में उभरे। रवींद्रनाथ टैगोर (1861-1941) के लेखन और काव्य जैसे 'गीतांजली', 'गोरा', 'घरे-बैरे' आदि ने इस विधा को अभूतपूर्व शिखरों तक पहुंचाया।

स्वर्णकुमारी देवी (1855-1932), जो देवेंद्रनाथ टैगोर की पुत्री थी, अपने लेखन के कारण बंगाली की पहली लेखिका के रूप में उभरी। शरत चंद्र चटर्जी (1876-1938) बंगाली उपन्यास लेखन की अत्यंत प्रसिद्ध विभुति के रूप में उभरे जिनकी 'देवदास' और 'परिणीता' आज भी बंगाली उपन्यासों में सर्वोत्तम रचनाएँ मानी जाती हैं।

वर्तमान काल में भी आधुनिक बंगाली साहित्य का अत्यंत विकास हो रहा है और कई नई साहित्यिक विभुतियों का भी पदार्पण हो रहा है।

(iii) गुजराती

गुजराती साहित्य का आरंभ भी क्षेत्र के पारंपरिक लोकगीतों में देखा जाता है। गुजराती साहित्य के पहले चरण का विकास, जो 12वीं से 14वीं शताब्दी के मध्य तक है, दो साहित्यिक रूपों में विभक्त करके देखा जाता है - प्रबंध या व्याख्यात्मक काव्य और मुक्तक या लघु काव्य। 16वीं से 18वीं शताब्दी का काल इस साहित्य के विकास का प्रायः दूसरा चरण माना जाता है। जैसा भारत के अन्य क्षेत्रों की भाषाओं के साथ हुआ उसी प्रकार 18वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में गुजराती साहित्यिक जीवन में भी अवसान हुआ। 19वीं शताब्दी से गुजराती साहित्य का आधुनिक काल प्रारंभ हुआ जिसमें इसका अनेक विधाओं जैसे नवयुग की काव्य शैली, ड्रामा, उपन्यास, लघु कहानियाँ, निबंध आदि रूप में विकास हुआ।

गुजराती भाषा में स्पष्ट रूप से पहली रचना शालिभद्र की 'भारतेश्वरबाहुबलिरास' है। शीघ्र ही गुजराती में प्रबंध और मुक्तक काव्य शैलियों का विकास हुआ। कई साहसिक और रोमांटिक काव्य और रास या दीर्घ-काव्य प्रबंध शैली में लिखे गए। पद्मनाभ (1456 ई०) की 'कन्हाड़ा दे प्रबंध' गुजरात के लोगों के मुस्लिम आक्रमणकारियों और उनकी सोमनाथ विजय के विरुद्ध साहसिक प्रदर्शन की व्याख्या प्रस्तुत करती है। इन काव्यों में रोमांचक घटनाओं के साथ-साथ ऐतिहासिक तथ्यों को भी प्रस्तुत किया गया है। भीम (1410 ई०) द्वारा रचित सदायावत्स कथा रोमांचक काव्य की श्रेणी की रचना है। यह पूर्ण रूप से काल्पनिक है तथा लोकप्रिय किवंदतियों पर आधारित प्रेम और साहसिक कारनामों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है। विजयसेन की 'रेवांतगिरी रास' रास साहित्य का एक रूप है। ऐसी रचनाएँ पौराणिक पात्रों के बावजूद समकालीन जीवन का अधिक सजीव चित्रण प्रस्तुत करती हैं।

इसी काल में मुक्तक साहित्य का भी विकास होता रहा। इसमें एक अनोखा या विशिष्ट रूप विकसित हुआ जिसे 'फगु' कहा जाता है। यह एक प्रकार की छोटी कविता है जिसमें 'विरह' का विषय प्रधान रहता है।

फगु लेखक जैसे राजशेखर, जयशेखर और सोमशेखर ने अपनी फगु रचना में उस काल के लोकप्रिय विषयों को आधार बनाया जिसमें मुख्य रूप से राजाला और नेमीनाथ की त्रासदीपूर्ण प्रेम कहानी है।

16वीं शताब्दी के उपरांत गुजरात में भी वैष्णव भक्ति आंदोलन का प्रभाव बढ़ता गया। अतः इस काल का गुजराती साहित्य धार्मिक और अलौकिक तत्त्वों से परिपूर्ण है। इस समय के प्रमुख कवियों में नरसिंह मेहता (1500-1580), भल्लन (1426-1500) का नाम उल्लेखनीय है। नरसिंह मेहता को उनकी कल्पनाशीलता के गुण और अनेक प्रकार की सृजनात्मक गतिविधियों के लिए गुजराती काव्य का जनक माना जाता है। भल्लन और अखो ने भी अपनी भिन्न-भिन्न काव्यात्मक शैली में रचना द्वारा इस साहित्य को समृद्ध करने में योगदान दिया। प्रेमानंद जो गुजरात में सभी कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं उनका आगमन वास्तव में बाद में हुआ उनका काल 17वीं सदी का उत्तरार्द्ध का है। ऐसा माना जाता है कि उनकी लगभग 57 कृतियाँ हैं जो अनेक प्रकार के विषयों पर आधारित हैं।

गुजराती साहित्य का आधुनिक काल 19वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। काव्य क्षेत्र में यदि बात करें तो प्रसिद्ध कवि जैसे दलपतराम दहियाभाई (1820-1898), नरसिंहराव, बी० दिवेतियास (1859-1937), मणिशंकर कांत, नानालाल, बलवंत राय आदि की रचनाओं ने गुजराती काव्य का आधुनिक काल में पर्दापण किया।

नरसिंहराव की 'कुसुममाला' (1887) ने गुजराती काव्य में पाश्चात्य लयात्मक शैली को अभिव्यक्ति के प्रधान रूप में प्रारंभ किया। लोकगीतों के साथ-साथ फारसी ग़ज़लों का भी व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाने लगा। नानालाल ने कई सुंदर लोकगीतों की रचना की और वे आधुनिक गुजराती के सर्वश्रेष्ठ लयात्मक शैली के कवि के रूप में जाने जाते हैं। 1930 में इसमें एक नये रुझान का आविभार्व हुआ जब नये कवियों ने गांधी के प्रभाव में स्वतंत्रता आंदोलन को केंद्र बनाकर कविताएँ और गीत लिखे।

आधुनिक गुजराती गद्य का विकास भी इसी प्रकार से हुआ। गोवर्धन त्रिपाठी (1855-1907) की 'सरस्वतीचंद्र' में राष्ट्रीयता के तत्त्व को प्रधान विषय बनाया गया है। इसी प्रकार रमनलाल देसाई की 'दिव्यचक्षु' सविनय अवज्ञा आंदोलन का विविध चित्रण प्रस्तुत करती है। के.एम. मुंशी (1888-1971) ने कथा-साहित्य के क्षेत्र को और ऐतिहासिक उपन्यास लेखन द्वारा और विस्तृत किया इसी प्रकार पन्नालाल पटेल क्षेत्रीय उपन्यास लेखन में उच्चतम स्तर तक पहुँचे। यही नहीं महात्मा गांधी ने भी आधुनिक गुजराती गद्य को अपने लेखन से समृद्ध बनाया। अनेक अनुच्छेदों, टिप्पणी के अतिरिक्त गांधी जी की 'हिंद स्वराज', 'आत्मकथा', 'दक्षिण अफ्रीकाना सत्याग्रहणों इतिहासा', 'आरोग्यणी छवि' आदि गुजराती भाषा में उल्लेखनीय योदान हैं।

आधुनिक गुजराती साहित्य ने लघु कथा लेखन और नाट्य लेखन के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति की है। गौरीशंकर गोवर्धनराम जोशी लघु-कथा लेखन में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। उनकी रचना 'धुमकेतु' उनके गुजराती में इस विधा पर अधिकार को प्रकट करती है। उनके अलावा रामनारायण पाठक एक अन्य श्रेष्ठ लघु कथा लेखक हैं। इसी प्रकार पाश्चात्य नाट्यों का रूपांतरण गुजराती में 1850 के दशक से शुरु हुआ। रमनभाई, के.एम. मुंशी, चंद्रवदन मेहता और यशवंत मेहता इस विधा के कुछ जाने माने लेखक हैं। रमनभाई की 'राय नो पर्वत' गुजराती की सर्वश्रेष्ठ नाट्य रचना मानी जाती है।

(iv) उड़िया

उड़िया भाषा में लेखन के प्रारंभिक साक्ष्य 13वीं शताब्दी से लघु लयात्मक और व्यंग्यात्मक कविताओं में देखने को मिलते हैं। उड़िया साहित्य सर्वप्रथम अपने यथोचित रूप में 14वीं शताब्दी में उभरा जब महान कवि सरलदास ने उड़िया में महाभारत तथा अन्य पाँच विभुतियों, जो पंच शाखा के नाम से प्रसिद्ध हैं, तथा बलरामदास और जगन्नाथदास जिसके प्रमुख अंग थे, ने साहित्यिक रचनाएँ लिखीं।

16वीं से 18वीं शताब्दी का काल उड़िया साहित्य का मध्यकालीन चरण कहलाता है। साधारणत: इस काल में दो रुझान देखने को मिलते हैं - (1) दरबारी काव्य जिसमें काव्य सौंदर्य और बुद्धि विवेक की प्रधानता थी (2) वैष्णव काव्य जिसमें भक्ति प्रेम भाव की अधिकता थी। परंतु प्राय: इन दोनों रुझानों का आपस में मिश्रण भी हो जाता था। उदाहरण के लिए दरबारी कवियों ने वैष्णव विषयों को अपनाया और वैष्णव कवियों ने ऐसी काव्य रचनाएँ लिखीं जो दरबारी कवियों की शोभा होती थी। उपेंद्र भंज (1670-1720) पहली श्रेणी के एक महत्त्वपूर्ण कवि थे जिनकी रचनाओं ने उड़िया काव्य के विकास में बहुमूल्य योगदान दिया। उड़ीसा के वैष्णव कवि श्री चैतन्य के भक्ति आंदोलन के तीव्र प्रभाव में थे। इस समूह के कवियों का प्रतिनिधित्व दीनकृष्ण दास, अभिमन्यु सामंत सिम्हार और कविसूर्य बलदेव जैसे

लोगों के हाथों में था। रामायण, महाभारत और भगवद् गीता रचनाओं के मुख्य स्रोत थे। अभिमन्यु सामंत सिम्हार की 'बीदग्ध चिंतामणि' इस समूह के कवियों के लेखन का प्रसिद्ध उदाहरण है।

उड़िया साहित्य का आधुनिक काल 19वीं शताब्दी के मध्य से आरंभ होता है। अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा पश्चिमी देशों के संपर्क में आने से उड़िया साहित्य में आधारभूत परिवर्तन आये। इसमें गद्य साहित्य का विकास हुआ जिसमें कालांतर में विविध रूप जैसे उपन्यास, ड्रामा, लघुकथाएँ, पत्रिका आदि विकसित हुए। आधुनिक उड़िया साहित्य राष्ट्रीय आंदोलन और गांधीवादी विचारधारा के प्रभाव में भी आया।

राधानाथ रे (1849-1908) उड़िया काव्य के जनक माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त मधुसुदन राव (1853-1912), फकीर मोहन सेनापति (1843-1918) आदि ने आधुनिक उड़िया के विकास को गति प्रदान की। राधानाथ रे की रचनाओं में पश्चिमी विचारों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

सेनापति जिन्होंने उड़िया गद्य का विकास किया उनकी रचनाओं में ग्रामीण जीवन का विवरण मिलता है।

इसके अतिरिक्त कुछ गुट, संस्थाएँ और इनके कार्यकलाप भी आधुनिक उड़िया साहित्य के विकास में योगदान दे रहे हैं। उदाहरण के लिए उत्कल संघ जिसकी स्थापना 1903 में मधु सुदन दास और सत्यवादी समूह के लेखकों ने की जो 20वीं शताब्दी के आरंभ में चले राष्ट्रीय आंदोलन की उत्पत्ति कही जा सकती है कुछ ऐसी ही संस्थाएँ हैं जो उड़िया साहित्य के विकास के लिए प्रयासरत हैं। इसी प्रकार प्राची समिति ने साहित्य के क्षेत्र में अनुसंधान किये हैं और कई प्राचीन रचनाओं को लोगों के लिए उपलब्ध करवाया है। विश्वनाथ कार और नीलमणि विद्यारत्न ने उड़िया में अपनी पत्रिका का प्रकाशन किया। इसीश्रृंखला में गोपाल चंद्र प्रहराज ने एक बहु-भाषीय शब्दकोश 'भाषा कोश' का प्रकाशन किया। वर्तमान समय में भी उड़िया साहित्य का ऐसा बहुमुखी विकास निरंतर जारी है जो इस साहित्य को और समृद्ध बना रहा है।

(v) मराठी

मराठी साहित्य का आरंभ तेरहवीं शताब्दी में हुआ। इस चरण में इसमें धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वों की प्रधानता रही जो 17वीं शताब्दी के अंत तक जारी रही। परंतु 17वीं शताब्दी से इसमें गैर-धार्मिक रचनाएँ भी लिखी जाने लगीं। इस प्रकार की रचनाएँ मराठी 'पोवादा' (Povada), जो एक प्रकार की काव्य शैली है जिसमें मराठा युद्धों और उनकी वीरता का बखान है, तथा 'लावणी', जो एक अन्य काव्य शैली है तथा जिसमें रोमांचक तत्त्वों का समावेश है, के रूप में विकसित हुईं। 18वीं शताब्दी से मराठी साहित्य में एक अन्य विधा 'बक्खर' का विकास हुआ जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण होता था। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ से मराठी साहित्य का आधुनिक युग शुरू हुआ।

नये युग के काव्यों के अतिरिक्त मराठी में जीवनियाँ (गद्य और पद्य दोनों विधाओं में), व्याकरण, शब्द-कोश, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, निबंध, ऐतिहासिक उपन्यास, ड्रामा और व्यंग्यात्मक रचनाएँ बड़ी संख्या में प्रकाशित की गईं।

आरंभ के तीन सौ वर्षों में मराठी साहित्य में धार्मिक और दार्शनिक विषयों की प्रधानता रही। मुकुंदराज इस काल के एक महत्त्वपूर्ण कवि थे जिन्होंने लोगों के लिए मुख्यत: शुद्ध लोकप्रिय भाषा में लिखा। उनकी 'विवेक-सिंधु' प्रारंभिक मराठी साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओं में से एक है। महानुभाव संप्रदाय के भक्त-कवि, जिन्होंने अपने गद्य और काव्य लेखन से मराठी में योगदान दिया, आरंभिक मराठी साहित्य के संस्थापक कहे जाते हैं।

इन भक्त-कवियों ने सात दीर्घ कविताएँ लिखीं। उन्होंने गद्य लेखन भी किया जो मुख्य रूप से जीवनी और दार्शनिक विषयों से संबंधित हैं। 'लीला चरित' जो इस संप्रदाय के संस्थापक संत चक्रधर की जीवनी है, 'गोविंद प्रभु चरित' जो चक्रधर के मार्ग दर्शक गोविंद प्रभु की जीवनी है तथा 'सिद्धांत सूत्र पाठ' जिसमें दैनिक जीवन से संबंधित उपदेश हैं इस काल की कुछ महत्त्वपूर्ण गद्य रचनाएँ हैं।

मराठी साहित्य के अगले चरण में कुछ महान विभुतियों का उदय हुआ जैसे ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम आदि। ज्ञानदेव की साहित्यिक प्रवीणता और दार्शनिक विचारों की गहराई उनकी रचना 'भावर्थ-दीपिका' जो 'ज्ञानेश्वरी' के नाम से प्रसिद्ध है और 'अमृत अनुभव' में पर्याप्त रूप में परिलक्षित होती है। अन्य संतों जैसे एकनाथ और तुकाराम की काव्य रचनाएँ साधारण जन तक मराठी भाषा में पहुंची और इसने उनके मानस पटल पर गहरा प्रभाव छोड़ा। इस संदर्भ में तुकाराम की 'अभंग' या लघु लयात्मक कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिसने अपने गीतात्मक गुण के कारण लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया। रामदास समर्थ, जो महान संत और शिवाजी के गुरु थे, इस काल के एक अन्य साहित्य से संबंधित विभुति थे। उनकी 'दासबोध' नामक रचना भक्ति और धार्मिक तत्त्वों और स्वतंत्रता तथा राष्ट्र स्थापना के तत्त्वों का मिश्रण है। इस काल के अंतिम महान कवि वामन पंडित थे जिन्होंने अलंकृत संस्कृत शैली में कविताएँ लिखीं।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मराठी काव्य में नये युग का आविर्भाव हुआ। के.के. दामले (जो केशवसुत के नाम से जाने जाते हैं) ने प्रेम काव्य, प्रकृति काव्य, सामाजिक चेतना संबंधी काव्य और नव-अलौकिकवाद संबंधी काव्य में नये मापदण्डों को ईजाद किया। 1930 तक कवियों के एक समूह ने जो 'रवि कराना मंडल' के नाम से जाना जाता था ने सरल मराठी काव्य की कई परंपराओं को लोकप्रिय बनाया। माधव ट्रिम्बक पटवर्धन और यशवंत दिनकर पेंढारकर इस समूह के अग्रिम रचियता थे। इसके साथ-साथ पहले के 'पोवादा' और 'लावाणि' जारी रहे। 'पोवादा' में अब मराठा पेशवा दरबार के वैभव को प्रकट किया जाने लगा तथा 'लावाणि' में प्रेम संबंधी विषयों को इस काल में भी प्रधानता दी जाती रही।

नये युग के मराठी गद्य में भी निरंतर प्रगति होती रही। 1829 में मराठी में सर्वप्रथम व्याकरण और शब्दकोश का प्रकाशन किया गया। कई विचारकों और समाज सुधारकों ने नये युग के मराठी गद्य के विकास में प्रत्यक्ष योगदान दिया। उदाहरण के लिए बाल शास्त्री जांबेकर (1810-46) ने 1831 में एक दैनिक पत्रिका 'दर्पण' का और 1841 में 'दिग्दर्शन' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। इसी प्रकार विष्णु शास्त्री चिपुलंकार (1850-82) ने 1881 में 'केसरी' नामक समाचार पत्र की स्थापना की जिसने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की देखरेख में राष्ट्रीय स्तर प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त इस संदर्भ में लोकहितवादी गोपाल हरि देशमुख (1823-1892) और गोपाल अगरकर (1856-1895) का नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होंने इस क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया।

ज्योतिबा फूले (1827-90), लोकमान्य तिलक (1856-1920), एस.एम. परांजपे (1864-1929), एन.सी. केलकर (1872-1947), वी.डी. सावरकर (1883-1966) आदि ने अनेक विषयों जिनमें समाज, दर्शन, राजनीति, राष्ट्र और रहस्यवाद सम्मिलित थे पर लेखन द्वारा अपने विचार प्रकट किये।

इस काल में मराठी उपन्यासों में भी वृद्धि हुई। हरि नारायण आप्टे (1864-1919) एक महान उपन्यासकार थे जिनकी 'उषाकाल' और 'मी' ने समकालीन महाराष्ट्र के जीवन से जुड़े सभी पहलुओं को उजागर किया। उनकी ये रचनाएँ मराठी उपन्यास लेखन में अत्यंत उत्कृष्ट मानी जाती हैं। इसी काल में

व्यंग्यात्मक और हास्य लेखन जैसे नये रुझान का भी मराठी में विकास हुआ। एस.के. कोलहातकर, राम गणेश गदकारी और सी.वी. जोशी इस विधा के कुछ महान नाम हैं।

मराठी ड्रामा की प्रगति में विनायक राव इरताने (1840-91), अन्ना साहेब किरलोसकर और अन्य लोगों का बहुमूल्य योगदान रहा है। अन्ना साहेब के नाटक 'शकुंतला' (1880), 'सौभद्रा' (1882) और 'रामराज्य-वियोग' (1884) मराठी नाटकों की उत्तमता के प्रतीक हैं।

(vi) पंजाबी

पंजाबी साहित्य के प्रथम चरण में, जो 12वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी के बीच का है, धार्मिक रहस्यवाद, वीर प्रधान गाथाओं और लोक साहित्य का वर्चस्व रहा। धीरे-धीरे इसमें रोमांचक काव्यों का उद्‌भव हुआ जिसके विषयवस्तु भारतीय और फारसी दोनों क्षेत्रों की लोकप्रिय प्रेम कहानियों से लिये जाते थे। दूसरे चरण में जो 16वीं से 18वीं शताब्दी का है पंजाबी गद्य लेखन में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। इसके अतिरिक्त इस चरण में संस्कृत से बड़ी संख्या में धार्मिक और दार्शनिक रचनाओं का पंजाबी में अनुवाद किया गया। पंजाबी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुआत 19वीं शताब्दी से हुई। ईसाई मिशनरियों द्वारा लुधियाना में सर्वप्रथम छापेखाने की स्थापना इस परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारक था। इसके उपरांत पंजाबी साहित्य का स्वर और प्रकार इस काल में पंजाब में हो रही महत्त्वपूर्ण घटनाओं के अनुरूप बदलता चला गया। उदाहरण के लिए गदर, अकाली और साम्यवादी आंदोलन ने इस साहित्य को काफी प्रभावित किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के काल में कई संस्थाएँ जैसे पंजाबी साहित्य अकादमी (लुधियाना), केंद्रीय पंजाबी लेखन सभा (जलंधर), और पंजाबी विश्वविद्यालय आदि पंजाबी साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं।

मसूद फरीदउद्‌दीन (1173-1265) एक उच्च स्तर के रहस्यवादी कवि थे जो प्रारंभिक पंजाबी काव्य के पथप्रदर्शक कहे जाते हैं। इसके उपरांत कई हिंदू और मुस्लिम कवियों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। गुरु नानक (1469-1533) एक अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्त्व थे जिन्होंने अनेक पदों और गीतों की रचना की। इन गीतों द्वारा उन्होंने एक जाति रहित समाज की स्थापना की बात की तथा एक सार्वभौमिक, नैतिकता से परिपूर्ण, कर्मकांड विरोधी, ऐकेश्वरवाद और आध्यात्मिक धर्म का उपदेश दिया।

गुरु अंगद (1539-1552) जो नानक के उत्तराधिकारी थे ने नानक की मौखिक शिक्षाओं को संकलित किया और उन्हें एक नई लिपि 'गुरुमुखी' में लिखित रूप दिया। सिख गुरु अर्जुन देव (1581-1606) ने पिछले सिख गुरुओं और अन्य संतों जैसे कबीर, नामदेव और रैदास की वाणियों को 'गुरु ग्रंथ साहिब' में समाहित किया। उनकी अपनी कृति 'सुखमणि' मध्यकालीन रहस्यवादी काव्य श्रेणी की एक लंबी और महान कविता है। सिखों के दसवें गुरु, गुरु गोविंद सिंह ने अपने काल के सभी पंजाबी कवियों को लेखन की मात्रा और विविधता में पीछे छोड़ दिया। कई रोमांचक काव्य भी लिखे गए। हीर रांझा जो वारिस शाह द्वारा लिखा गया इस श्रेणी की उत्तम रचना है। पंजाबी गद्य की सर्वाधिक प्रारंभिक रचनाएँ 'जनम साखी' (गुरुओं की जीवनी), बचन (उपदेश) और परमारथ (धार्मिक ग्रंथों पर टीका) रूप में विकसित हुई।

आधुनिक पंजाबी साहित्य के विकास की शुरुआत 19वीं शताब्दी से हुई। पहला पंजाबी समाचार पत्र लुधियाना में ईसाई मिशनरियों द्वारा आरंभ किया गया। जे. न्यूटन ने सर्वप्रथम पंजाबी व्याकरण लिखा। पंजाबी में प्रारंभिक शब्दकोश 1838 और 1854 में प्रकाशित किया गया। सिंह सभा आंदोलन की उत्पत्ति ने पंजाबी साहित्य के विकास को और तीव्रता प्रदान की। भाई वीर सिंह (1872-1957) ने कई उपन्यास लिखे जैसे 'सुंदरी', 'विजय सिंह', और 'बाबा नौध सिंह'। उन्होंने कई लंबी कविताओं की भी रचना की

जैसे 'राणा सूरत सिंह'। अन्य उल्लेखनीय समकालीन कवियों में पुरन सिंह (1882-1932) और धनी राम चलरिक (1876-1954) प्रमुख हैं।

गदर, अकाली और साम्यवादी आंदोलनों की शुरुआत ने पंजाबी साहित्य को धार्मिक और रहस्यवादी विषयों से हटाकर राष्ट्रीय और राजनैतिक विषयों पर केंद्रित किया। मोहन सिंह, अमृता प्रीतम, संतोख सिंह, तख्त सिंह आदि आधुनिक प्रगतिवादी काव्य के कुछ प्रमुख नाम हैं।

इच चरण में पंजाबी ड्रामा का भी अभूतपूर्व विकास हुआ। कई नाटककारों का साहित्य पटल पर पर्दापण हुआ जैसे आई.सी. नंद शेखों, बलवंत गार्गी आदि। इनके नाटक पंजाबी ड्रामा की उत्कृष्टता को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार पंजाबी उपन्यास के विकास में भी कई विभुतियों का योगदान रहा है जैसे नानक सिंह, अमृता प्रीतम, नरिदरपाल सिंह, सुरिंदर सिंह नरुला आदि। इसके अतिरिक्त अग्रणी साहित्यिक विभुतियाँ जैसे संत सिंह शेखों और कुलवंत सिंह विर्क ने पंजाबी लघु कथाओं को और सजीव बनाया।

आज के समय में पत्रिकाओं के प्रकाशन जैसे 'प्रीत लाडी' और साहित्यिक पत्रिकाएँ जैसे 'पंज दरिया', 'पंजाबी दुनिया', 'अरसी', 'आलोचना', 'साहित्य समाचार' आदि आधुनिक पंजाबी साहित्य के विकास में प्रमुख योगदान दे रहे हैं।

(vii) सिंधी

सिंधी साहित्य का आरंभ 14वीं शताब्दी से माना जाता है। अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की ही भांति प्रारंभिक सिंधी काव्य पर भी धार्मिक और रहस्यवादी विषयों का ही वर्चस्व रहा। पर 18वीं शताब्दी से फारसी काव्य के प्रभाव के कारण सिंधी काव्य का रुख रोमांचक विषयों की ओर होने लगा। 1843 में सिंध पर अंग्रेजों की विजय एक प्रकार से सिंधी साहित्य के विकास के लिए वरदान साबित हुई। 19वीं शताब्दी से पहले सिंधी भाषा की कोई व्यवस्थित लिपि नहीं थी। ब्रिटिश विजय के उपरांत सिंधी भाषा के लिए अरबी शब्दों का प्रावधान किया गया और 52 अक्षरों की वर्णमाला द्वारा सिंधी लिपि को एक स्तरीय रूप प्रदान किया गया। इसके उपरांत सिंधी साहित्य ने आधुनिक युग में प्रवेश किया।

इस चरण में ड्रामा, उपन्यास, लघुकथाएँ, निबंध, साहित्यिक आलोचना आदि के लेखन में तीव्र प्रगति हुई। इसके अतिरिक्त कई संस्थाएँ जैसे सिंधी साहित्य सोसाइटी (स्थापना 1914) आज सिंधी साहित्य को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

सिंधी साहित्य का प्रारंभिक चरण तीन सिंधी-कवियों के वर्चस्व का काल था। ये शाह अब्दुल लतीफ (1689-1752), अब्दुल वहाब (1739-1850) जो साचल के नाम से जाने जाते हैं और भाई चैनराय (1743-1850) हैं। ये कवि स्पष्ट रूप से सूफी विचारधारा से प्रभावित थे। शाह अब्दुल लतीफ के विशिष्ट सूफी विचार तथा इन विचारों का विविध चित्रण और उनकी रचनाओं के सौंदर्य ने उन्हें एक महान सिंधी कवि का खिताब दिलाया। ऐसा माना जाता है कि साचल ने सिंधी में एक लाख से भी अधिक पदों की रचना की। सामी पहले लोकप्रिय हिंदू वेदांतवादी कवि थे जिन्होंने 15,000 पदों से भी अधिक पदों की श्लोक रूप में रचना की।

हालांकि सिंधी काव्य की शुरुआत प्रधानत: दोहों और सराठों के रूप में हुई पर 18वीं शताब्दी से फारसी काव्य रूप जैस ग़ज़ल, कसीदा, मसनवी आदि भी इसमें शामिल हो गए। इस विधा के प्रमुख रचनाकारों में मोहम्मद गुल, मुल्ला मोहम्मद कासिम, शम्स-उद्-दीन बुलबुल आदि प्रमुख हैं। व्यंग्यात्मक काव्य और ऐसा काव्य जो सिंधी लोक कथाओं पर आधारित था उसका भी इस काल में उल्लेखनीय विकास हुआ।

परंतु सिंधी गद्य का विकास हाल के वर्षों में हुआ है। सिंध पर ब्रिटिश विजय ने सिंधी में बड़ी संख्या में ईसाई धर्म ग्रंथों के अनुवाद और प्रकाशन में सहायता प्रदान की। परंतु सिंधी में प्रारंभिक गद्य लेखन के क्षेत्र में कुरान शरीफ का 1746 में अज़ीज़उल्लाह द्वारा अनुवाद किया गया।

सिंधी-साहित्य पर ब्रिटिश प्रभाव मुख्य रूप से 15 पुस्तकों के प्रकाशन से आया जो 19वीं शताब्दी की समाप्ति से पहले लिखी गईं तथा जिनमें चार व्याकरण और पाँच शब्दकोश शामिल हैं। इसके बाद कई व्याकरण और शब्दकोशों का प्रकाशन किया गया। उदाहरण के लिए लक्ष्मण विष्णु परांजपे (1868) की आंग्ल-सिंधी शब्दकोश, परमानंद मेवाराम की सिंधी-आंग्ल (1910) और आंग्ल-सिंधी (1933) शब्दकोश आदि। धीरे-धरे सिंध क्षेत्र की लोककथाओं, कला, विज्ञान, जीवविज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि पर भी पुस्तकें प्रकाशित की जाने लगीं।

सिंधी नाट्य में भी कई अनुवादित रचनाएँ तथा मौलिक ड्रामा लिखे गए। मिर्ज़ा कलिच बेग ने शेक्सपीयर के लगभग सभी ड्रामों का अनुवाद किया और साथ ही मौलिक ड्रामा जैसे 'लैला मजनू' (1880), 'खुर्शीद' (1887) और 'शकुंतला' की रचना की।

राजा हर्ष द्वारा रचित संस्कृत ड्रामा 'रत्नावली' का भी सिंधी में 1888 में अनुवाद किया गया। इसके अतिरिक्त यूरोपीय ड्रामा जैसे 'इबसेन' (Ibsen), 'शेरीडन' (Sheridan) आदि को भी सिंधी साहित्य में शामिल किया गया। खानचंद दरयानी, जो सिंधी के एक अग्रणी नाटककार थे, ने कई मौलिक ड्रामा लिखे। इनमें 'गुलाब-जो गुल' (1920), 'जमींदारी जुलुम' (1928), 'रत्ना' (1924), 'ज़माने जी लहर' (1929) आदि लोकप्रिय ड्रामा हैं।

सिंधी उपन्यास की भी साधारण शुरुआत ही हुई। जगत आडवाणी पहले प्रमुख सिंधी उपन्यासकार थे। पर उनके कार्यों का केंद्र अन्य भाषाओं के उपन्यासों को अनुवाद करना था। उन्होंने सिंधी में शरत चन्द्र चटर्जी, रवींद्रनाथ टैगोर, मुंशी प्रेम चंद आदि उपन्यासकारों की रचनाओं का अनुवाद किया। धीरे-धीरे मौलिक उपन्यास भी इस भाषा में लिखे जाने लगे। मिर्ज़ा कलिच बेग ने 'दिलराम' (1888) और 'ज़ीनत' (1890) लिखा। इस काल में कुछ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये जैसे गुरुभाखनी की 'नूरजहां' (1915) और अब्दुल रज़्जाक की 'जहाँ आरा' (1935)।

सिंधी लघु कथा की शुरुआत धार्मिक विषयों से हुई जिसमें नैतिक मूल्यों पर अधिक बल दिया गया। पर शीघ्र ही लघु कथाएँ सामाजिक और ऐतिहासिक विषयों पर भी लिखी जाने लगीं। भेरुमल की 'प्रेम-जो-मोहातम' (1914) रचना पारिवारिक जीवन पर प्रकाश डालती है। निमर्ल दास फतेहचंद की 'सरोजिनी' हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रस्तुतीकरण है। अमरलाल हिंगोरानी, उस्मान अली अंसारी और नानीक्रान मीरचंदानी सिंध साहित्य क्षेत्र के अन्य महत्त्वपूर्ण नाम हैं।

इसी प्रकार निबंधकारों ने अनेक निबंध लखे। उदाहरण के लिए मिर्ज़ा कलिच बेग, साधु हीरानंद, परमानंद मेवाराम, लालचंद आदि ने धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक, देशप्रेम, सूफी और सामाजिक विषयों पर निबंध लिखे।

साहित्यिक आलोचना का रुझान साधारणत: 19वीं शताब्दी की देन है। सिंधी भाषा में भी इस विधा का प्रचलन बढ़ा। फाज़िल शाह, होटचंद गुरुबुखानी, भेरुमल आदि सिंधी गद्य की इस शाखा में योगदान देने में अग्रणी रहे हैं।

(viii) हिंदी

हिंदी साहित्य का उद्‌भव साधारणत: 10वीं और 11वीं शताब्दी के बीच नाथपंथियों की लेखनी में देखा जाता है। पर इस काल का लेखन साहित्यिक मूल्यों में निम्न स्तर का रहा। हिंदी साहित्य के प्रथम चरण का विकास जिसे 'आदि काल' कहा जाता है का आरंभ 11वीं शताब्दी से हुआ।

इस चरण के साहित्य प्रकाशन का मुख्य केंद्र राजस्थान था। इस काल की रचनाओं को मुख्यत: दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। पहला जिसमें गाथा रूप में रचनाएँ लिखी गई जो समूहगान और नृत्य (रासो) में प्रकट करने हेतु थीं, तथा दूसरा गढ़ साहित्यिक शैली में लिखा गया जिसमें भिन्न छंदों का प्रयोग कर नायक के रोमांचक और युद्ध कार्यों (रास) को कहानी रूप में प्रस्तुत करना शामिल था। दूसरे चरण में (1318–1643), जो भक्तिकाल कहलाता है, हिंदी पद्य में समुचित रचनाएँ की गईं जो धर्म, नैतिकता, और रहस्यवादी विषयों पर आधारित थीं। ये मुख्य रूप से भक्ति संतों की दो प्रधान विचारधाराओं 'निर्गुण' और 'सगुण' भक्ति से प्रभावित थीं।

1650 से 1850 के बीच का काल हिंदी साहित्य के विकास का तीसरा चरण माना जाता है। इस काल के कवि उच्च वर्ग से संबंधित थे और शैक्षिक व्यवसाय से जुड़े थे जिन्होंने न केवल काव्य का अनुसरण किया बल्कि काव्य को सैद्धांति रूप से भी निरुपित किया। रीतिकाल काव्य का मुख्य विषय सांसारिक प्रेम था। चौथा चरण जो आधुनिक काल कहा जाता है कि शुरुआत भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1846–1884) के समय से हुई जिन्हें आधुनिक हिन्दी साहित्य का जनक कहा जाता है। प्रारंभिक वर्षों में आधुनिक हिंदी काव्य में समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को प्रधान विषय बनाया गया। इसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना का विकास करना था। पर इस प्रकार से मानव–जीवन में नैतिक मूल्यों पर अत्यधिक बल देने की प्रतिक्रिया के रूप में आधुनिक हिंदी काव्य का अगले चरण में प्रवेश हुआ जिसे छायावाद कहा गया। इसमें मानव की प्राकृतिक भावनाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण बनीं। हिंदी साहित्य में छायावादी रुझान 1937 तक जारी रहा। समकालीन हिंदी काव्य वामपंथी विचारधारा से प्रभावित है जिसमें दो परस्पर विरोधी रुझानों का आर्विभाव हुआ। इसमें पहले प्रगतिवाद है जिसे लोगों के काव्य रूप में परिभाषित किया जाता है जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्रत्यक्ष रूप से प्रेरित है। दूसरे को प्रयोगवाद या नव साहित्य कहा जाता है जिसके अंतर्गत परीक्षण और हर तत्त्व को प्रश्न करने की प्रवृत्ति को जीवन और साहित्य का मूल मंत्र माना जाता है।

आधुनिक हिंदी गद्य भी अपने स्पष्ट रूप में 1850 के बाद विकसित होना आरंभ हुआ। ड्रामा, उपन्यास, लघु कथाएँ, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, साहित्यिक आलोचनाएँ आदि जो गद्य की विभिन्न विधाएँ हैं ने आधुनिक हिंदी साहित्य में अपनी एक स्वतंत्र और अलग पहचान स्थापित की है।

आदिकाल साहित्य में रास श्रेणी के अंतर्गत नरपति नाल्हा की शास्त्रीय कविता 'बीसलदेव रासो' एक प्रशंसनीय कार्य है। इसकी रचना 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में की गई। इसकी भाषा राजस्थानी डिंगल भाषा से बहुत मिलती जुलती है और इसका विषय एक ऐसी स्त्री के दुख का है जिसका प्रेमी उसे क्रोध में छोड़ गया है। रास साहित्य परंपरा के अंतर्गत लिखी गई रचनाओं में चंदबरदाई की 'पृथ्वीराज रासो' एक महान कृति है। चंदबरदाई पृथ्वी राज चौहान के दिल्ली और अजमेर दरबार के चारण कवि थे। अपनी साहित्यिक विशिष्टता के लिए हिंदी में इसे प्रथम महाकाव्य भी माना जाता है।

भक्तिकाल के हिंदी साहित्य में निर्गुण और सगुण दोनों परंपराओं के संत कवि और सूफी संतों का योगदान रहा है। उन्होंने अपनी कविताएँ धार्मिक, रहस्यावादी तत्त्वों और सामाजिक विषयों पर लिखीं। कबीर (1398–1518) ने कई गीत और पद्य (साखी) लिखे जो अपनी साहित्यिक उत्तमता के लिए

उल्लेखनीय हैं। रहस्यवाद जैसे विषयों पर कबीर की रचनाएँ साधारण और भक्ति-आधारित स्वर की हो जाती हैं। पर सामाजिक विषयों पर अपनी रचनाओं में कबीर स्पष्टवादी या खरा बोलने वाले हैं। वे समकालीन हिंदू और इस्लाम धर्म में व्याप्त सभी प्रकार की सामाजिक और धार्मिक बुराईयों की कड़ी आलोचना करते हैं। कबीर के बाद निर्गुण परंपरा के अन्य कई प्रसिद्ध संत कवि हुए जैसे धर्मदास, गुरुनानक, दादू, सुंदरदास आदि। वहीं सगुण विचारधारा निर्गुण विचारधारा के विपरीत थी। सगुण परंपरा की रचनाओं में दो प्रधान रुझान देखने को मिलते हैं - राम और कृष्ण से संबद्ध भक्ति रचनाएँ। सगुण परंपरा में राम भक्ति के अग्रणी संत कवि तुलसीदास (1532-1563) थे जिन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना की। इसे मध्यकालीन हिंदू संस्कृति का प्रतीक माना जाता है। सगुण परंपरा में कृष्ण भक्ति के संत कवियों में सूरदास (1483-1563) का प्रमुख स्थान है जिनकी 'सूरसागर' मध्यकालीन हिंदी साहित्य की अनुपम कृतियों में से एक मानी जाती है। इसके अतिरिक्त विद्यापति, नंददास, हीत हरिवंश, मीराबाई और रसखान आदि इस परंपरा के कुछ अन्य प्रमुख संत कवि थे जिनकी काव्य रचनाओं ने तत्कालीन हिंदी साहित्य में प्रचुर अधिवृद्धि की। वहीं दूसरी ओर सूफी संतों ने फारसी काव्य शैली के प्रभाव में रोमांचक काव्य लिखे जो हिंदू और मुस्लिम जीवन से संबंधित साझी प्रेम कहानियाँ थीं। मलिक मोहम्मद जायसी की 'पद्मावत' (1540), कुतबान की 'मृगवती' (1501), मंझन की 'मधुमालती', उथ्मन की 'चित्रावली' (1613) और नूर मोहम्मद की 'इंद्रवती' आदि इस श्रेणी में मध्यकालीन हिंदी साहित्य की अमूल्य कृतियाँ हैं। इस काल की एक अन्य महान साहित्यिक विभुति अब्दुर रहीम खान-ए-खाना थे जो मुगल बादशाह अकबर के दरबार की शोभा थे। इस राजनेता कवि ने नैतिक मूल्यों और सद्गुणों पर कविताएँ लिखीं।

रीतिकाल के पहले उल्लेखनीय कवि केशवदास थे जिनके उपरांत चिंतामणि, मति राम (1617-1716), बिहारी (1603-1663), और देव (1673-1767) जैसे कवियों का हिंदी साहित्यिक पटल पर आविर्भाव हुआ। अन्य महान कवि भूषण को भी इसी समूह के कवियों की श्रेणी में रखा जाता है हालांकि उनकी रचनाओं के सभी विषय शिवाजी के मुगलों के विरुद्ध वीरतापूर्ण संघर्ष से संबंधित थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं ने हिंदी काव्य में आधुनिक युग को आरंभ किया। इस प्रक्रिया को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1870-1938), अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (1865-1946), माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण 'नवीन' और रामधारी सिहं 'दिनकर' ने आगे बढ़ाया।

परंतु इन कवियों के साहित्य में नैतिक पहलुओं पर अधिक ज़ोर ने ऐसी प्रतिक्रिया को जन्म दिया जो जय शंकर प्रसाद के छायावाद रूप में अभिव्यक्त हुई। प्रसाद की 'कामायनी' एक प्रकार का महाकाव्य है जो मानवीय आत्माओं के आधुनिक युग की पृष्ठभूमि में निरंतर संघर्ष को प्रदर्शित करता है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रा नंदन पंत और महादेवी वर्मा आदि छायावाद के कुछ अन्य प्रतिपादक हैं। उत्तर छायावाद काल में आधुनिक हिंदी काव्य ने कई नये क्षेत्रों में भी विस्तार किया है।

हिंदी में वास्तविक रूप में पहला मौलिक ड्रामा 'नहुआ नाटक' (1937) था। यह भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पिता गोपाल चंद्र द्वारा लिखा गया था। परंतु फिर भी हिंदी ड्रामा की वास्तविक शुरुआत भारतेन्दु हरिश्चंद्र से मानी जाती है जिन्होंने संस्कृत नाटकों की तकनीकों और पश्चिमी ड्रामा में सामंजस्य बिठा कर आधुनिक हिंदी नाटक लिखे तथा उनका अपने निर्देशन में मंच पर प्रस्तुतीकरण किया। उनके द्वारा लिखे गये कुछ लोकप्रिय नाटकों में 'अंधेर नगरी', 'भारत-दुर्दशा', 'सत्य हरिश्चंद्र' आदि हैं। जयशंकर प्रसाद ने भी कुछ लोकप्रिय नाटक लिखे। उदाहरण के लिए 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'स्कंदगुप्त' आदि। इसी प्रकार एक अन्य नाटककार मोहन राकेश के 'आधे-अधूरे', 'आषाढ़ का एक

दिन' और 'लहरों के राजहंस' अत्यधिक उच्च स्तर के नाटक माने जाते हैं। आधुनिक हिंदी उपन्यास भी आधुनिक युग की ही देन हैं। मुंशी प्रेमचंद (1880–1936) ने कई उपन्यास लिखे जो पश्चिमी देशों के प्रसिद्ध लेखक जैसे लियो टॉलस्टाय (Leo Tolstoy) और चार्ल्स डिकन्स के सामाजिक–राजनैतिक विचारों से प्रेरित थे। 'गोदान', 'गबन', 'रंगभूमि', 'निर्मला' और 'सेवासदन' प्रेमचंद द्वारा लिखे गये कुछ चर्चित उपन्यास हैं। आज के समय में नये प्रकार के उपन्यासों का भी विकास हुआ है जिसके जैनेन्द्र, यशपाल, श्रीलाल शुक्ल आदि चर्चित लेखक हैं।

साहित्यिक आलोचना आुधनिक हिंदी गद्य का एक अन्य रूप है जिसका उत्थान हाल के वर्षों में हुआ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, राम विलास शर्मा, डॉ० नागेंद्र, डॉ० नामवर सिंह आदि आधुनिक हिंदी साहित्य के कुछ अग्रणी साहित्यिक आलोचक हैं।

(ix) कश्मीरी

कश्मीरी भाषा में साहित्यिक गतिविधियों की शुरुआत 14वीं शताब्दी से पहले की नहीं कही जा सकती। अन्य शब्दों में कश्मीरी भाषा में साहित्यिक गतिविधियों की शुरुआत 14वीं शताब्दी के बाद शुरु हुई परंतु यह 18वीं शताब्दी का काल है जिसमें इस भाषा में सभी प्रमुख रूपों में लेखन देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए धार्मिक और गैर–धार्मिक काव्य तथा गद्य जैसे ड्रामा, उपन्यास, साहित्यिक आलोचना, लघु कथा आदि।

कश्मीरी भाषा के प्रारंभिक काल में लाल देद जो 14वीं शताब्दी कश्मीर की महिला संत कवि थीं और जिन्हें दूसरी राबिया कहा जाता है प्रसिद्ध साहित्यिक विभुतियों में से एक थीं। पहली इराक के बसरा शहर की रबी अल अदाविया थीं जो इस्लामिक परंपरा की पहली महिला सूफी संत मानी जाती हैं।

कश्मीरी कवियों में लाल देद को प्रथम स्थान दिया जाता है तथा उन्हें आधुनिक कश्मीरी भाषा और साहित्य की निर्मात्री माना जाता है। उन्होंने कई पद्य या 'वाख' की रचना की। 'वाख' चार पंक्तियों की कविता है जो अपने आप में या स्वयं में पूर्ण होती है। उनकी 'वाख' ने कश्मीरी भाषा को दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्त करने के पर्याप्त माध्यम के रूप में उभरने में सहायता प्रदान की। उन्होंने संस्कृत शब्द रूपों का कश्मीरी में प्रयोग किया और इस प्रक्रिया में नये शब्दों को जन्म दिया। उनकी कविताएँ आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित हैं।

19वीं शताब्दी में कश्मीरी साहित्य का तेजी से विकास हुआ। नये और उत्कृष्ट काव्यों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। परमानंद, प्रकाश राम और कृष्ण राजदान इस युग के कुछ महत्त्वपूर्ण कवि हैं। परमानंद ने हिंदू धार्मिक विषयों पर लाक्षणिक आख्यान लिखे। 'राधा स्वयंवर', 'सुदामाचरित' और 'शिवालय' कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं। प्रकाश राम ने रामायण का कश्मीरी अनुवाद प्रस्तुत किया। कृष्ण राजदान ने लोकप्रिय भक्ति गीतों की ग्रामीण लोकगीतों और गाथाओं की धुन पर रचना की। इस काल के कुछ प्रमुख मुस्लिम कवि महमूद गामी, रसूल मीर, वहाब पारु आदि थे। महमूद गामी की प्रमुख कृतियों में 'युसुफ–जुलेखा', 'खुसरो–शिरीन', और 'लैला मजनू' हैं। वहाब पारु ने फिरदौसी के 'शाहनामा' का अनुवाद किया। जे.एच. नोअल्स ने कश्मीरी लोक कथाओं और कहावतों को अग्रेंजी में लिखा। 19वीं शताब्दी के अंत तक कश्मीरी भाषा में गीत और ग़ज़ल लेखन में भी प्रगति हुई। इस काल में इसमें एक विशिष्ट प्रकार की हास्य–व्यंग्य गाथा शैली का जन्म हुआ जिसे 'लोदीशाह' कहा गया।

20वीं शताब्दी के आरंभिक काल में कश्मीरी को कई प्रकार की गतिविधियों ने प्रभावित किया। उदाहरण के लिए भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का उत्थान, पाश्चात्य विचारों और साहित्य का ज्ञान, अन्य

उत्तर भारतीय क्षेत्रों के साहित्य में नये विकास आदि ने 20वीं सदी के आरंभ में कश्मीरी भाषा के प्रभावित किया। गुलाम अहमद मोहज़ूर (1885-1952) पहले ऐसे कवि थे जिनकी कविताओं ने उपर्युक्त कई तत्त्वों को समाहित किया। उनके बाद अब्दुल आज़ाद (1905-1948) ने समाजवादी प्रभाव के अंतर्गत कविताओं की रचना की। आज के समय के जाने माने कवियों में दयाराम गंजू, जिंदा कौल और गुलाम हसन बेग 'आरिफ' हैं। इसके अतिरिक्त ड्रामा, उपन्यास और लघु कथा में नये साहित्यिक रूपों का विकास हो रहा है और ये स्थिर प्रगति कर रहे हैं।

5. दक्षिण भारतीय 'वर्नाक्यूलर' साहित्य

इसके अंतर्गत हम कन्नड़, तेलुगु और मलयालम 'वर्नाक्यूलर' के प्रमुख कवियों, लेखकों, नाटककारों आदि के साथ-साथ साहित्यिक रुझान, रचनाएँ और प्रकारों की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे।

(i) कन्नड़

प्रारंभिक कन्नड़ साहित्य में जैन लेखकों का वर्चस्व था। श्रीवर्धदेव और श्यामकुंदाचार्य इस काल के प्रमुख रचयिता थे। श्रीवर्धदेव ने 'चूड़ामणि' लिखी जो 96,000 पदों की 'तत्त्वार्थ-महाशास्त्र' पर टीका है। परंतु कन्नड़ में सर्वाधिक प्रारंभिक रचना 'कविराज मार्ग' है जो काव्य और अलंकार शास्त्र या साहित्य शास्त्र पर लिखी गई रचना है। यह नृपतुंग द्वारा लिखी गई जिन्हें साधारणतया राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथम (814-880 ईस्वी) के नाम से जाना जाता है। शिवकोटी (लगभग 900 ईस्वी) की 'वद्दाराधाने' इस काल की अन्य महत्त्वपूर्ण रचना है। गद्य शैली में लिखी गई यह रचना कुछ जैन संतों के जीवन का व्याख्यान प्रस्तुत करती है।

कन्नड़ साहित्य के अगले चरण में कन्नड़ साहित्य की तीन प्रसिद्ध विभुतियों का वर्चस्व रहा। ये विभुतियाँ थीं पंपा, पोन्ना और रन्ना। पंपा (941) ने राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय के सामंत अरिकेसरी द्वितीय के संरक्षण में लेखन किया और 'आदिपुराण' की रचना की। उनकी यह रचना पहले जैन तीर्थंकर के जीवन का विवरण प्रस्तुत करती है। इसके अतिरिक्त उनकी अन्य प्रमुख रचना 'विक्रमारगुण विजय' जिसे 'पंपा भारत' भी कहा जाता है लेखक की महाभारत कहानी का अपनी शैली में किया गया अनुवाद है। आलोचकों ने सर्वसम्मित से पंपा को कन्नड़ कवियों में सबसे विशिष्ट माना है। उसके उपरांत पोन्ना (950) का काल है। उनकी रचना 'शांतिपुराण' सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ की जीवनी है। उन्होंने 'भुवानाई-कर्माभ्युदय' और 'जिनकसरमाले' नामक रचनाएँ भी लिखीं। उनकी कृतियों के लिए राष्ट्रकूट राजा कृष्णा तृतीय ने उन्हें 'उभयकविचक्रयार्ती' जिसका अर्थ है 'दो भाषाओं के उत्तम कवि' जिसमें संस्कृत और कन्नड़ शामिल हैं की उपाधि से सुशोभित किया। रन्ना इस चरण के तीसरे प्रसिद्ध कवि थे जो चालुक्य राजा तैला द्वितीय और उनके उत्तराधिकारी के दरबार की शोभा थे। उन्होंने 'साहसभीम विजय' या 'गदायुद्ध' (982) की रचना की। इसमें विशेष रूप से महाभारत में भीम और दुर्योधन के मध्य हुए गदायुद्ध के प्रकरण का विवरण है। उन्होंने जैनों के दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ के जीवन पर 'अजीत पुराण' लिखा। रन्ना की दो अन्य कृतियाँ 'परशुरामचरित' और 'चक्रेश्वर चरित' अब उपलब्ध नहीं हैं। अपनी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचनाओं के कारण इन तीनों को 'रत्नत्राय' (तीन रत्न या त्रिरत्न) और उनके काल को कन्नड़ का 'स्वर्णिम युग' कहा जाता है।

कन्नड़ साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव आगे भी जारी रहा। यह तीर्थंकरों की जीवनियों, क्लासिक या शास्त्रीय संस्कृत के जैन अनुवादों जैसे महाभारत या रामायण और कथा-साहित्यों के रूप में प्रस्तुत किया गया जिसका उद्देश्य अन्य धर्मों और संप्रदायों पर जैन संप्रदाय के वर्चस्व को स्थापित करना था। नागचंद्र ने

'मल्लीनाथपुराण' (1105) लिखा जो उन्नीसवें तीर्थंकर की जीवनी है। इसी प्रकार कर्णप्रिय की 'नेमीनाथ पुराण' (1145) बाईसवें तीर्थंकर नेमीनाथ की जीवन-कथा है। इसी श्रंखला में, जन्न की 'अनंतनाथ पुराण' (1230) चौदहवें तीर्थंकर की जीवनी है। मधुर ने 'धर्मनाथ पुराण' (1385) की रचना की जो पंद्रहवें तीर्थंकर की जीवन-कथा है। नागचंद्र की 'रामचंद्र चरितपुराण' राम कथा का जैन अनुवाद प्रस्तुत करती है जिसमें राम जनै धर्म अपना लेते हैं और अंतत: मोक्ष प्राप्त करते हैं। ब्रह्मशिव ने 'श्यामपणिक्क्षे' नामक रचना जैन धर्म के सभी धर्मों पर वर्चस्व स्थापित करने के उद्देश्य से लिखी।

जैनों के अतिरिक्त वीर-शैव संप्रदाय के लोगों ने कन्नड़ साहित्य के विकास में सबसे अधिक योगदान दिया। इस संप्रदाय में लेखकों की संख्या 200 से भी अधिक थी और उन्होंने मुख्यत: गद्य माध्यम को अधिक महत्त्वता दी। इसमें कई लेखिकाएँ भी थीं जिनमें सबसे प्रसिद्ध महादेवी यक्का थीं। बासव (1160) और उनके समकालीन संत अलामा प्रभु, चेन्नाबासव और महादेवी यक्का ने नये प्रकार की गद्य शैली का आविष्कार किया जिसे 'वाचन' (Vachanas) कहा गया। ये अपनी सरलता और साधारण कन्नड़ के प्रयोग के लिए जाने जाते हैं।

इस काल में कन्नड़ साहित्य में कुछ उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। लेखन में 'चंपु' रूप का प्रयोग खत्म होने लगा और नये काव्य मापक जैसे 'शतपदी' और 'त्रिपदी' जिनमें क्रमश: छह और तीन पंक्तियाँ होती थीं प्रकाश में आई। वीर-शैव संप्रदाय ने दो श्रेणियों में कन्नड़ साहित्य को प्रस्तुत किया। पहला भक्तों और सुधार की कहानियाँ, और दूसरा, नीतियों या शिक्षाओं का प्रस्तुतीकरण। भीमकवि की 'बासवपुराण' (1369) और सिंगीराज की 'माला-बासव-राजा-चरित' (1500) ने बासव द्वारा अपने जीवनकाल में किये गये चमत्कारों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त चामारासे (1430) की 'प्रभुलिंग-लील' के प्रमुख पात्र अलामा प्रभु हैं जो बासव से ही संबद्ध थे। इसी प्रकार विरुपक्ष पंडित की 'चेन्ना बासव पुराण' में चेन्ना बासव को प्रमुख पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो बासव के भांजे या भतीजे थे। नीतियों की श्रेणी से संबंधित साहित्य लेखन में लक्कान (विजयनगर के राजा देवराय द्वितीय के लिंगायत मंत्री) की 'शिवतत्त्व-चिंतामणि' इस संप्रदाय के सिद्धांतों और धर्मविधियों पर लिखा गया प्रबंध है। वीर-शैव साहित्य आगे की शताब्दियों में भी बड़ी सख्या में निरंतर लिखा जाता रहा।

वैष्णव आंदोलन का भी कन्नड़ साहित्य पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है। परंतु कन्नड़ साहित्य पर इसका तीव्र प्रभाव विजय नगर के प्रसिद्ध राजा कृष्णदेव राय के समय से ही देखा जाता है। इस काल में कन्नड़ वैष्णव साहित्य में दो प्रमुख रूपों का विकास हुआ। प्रथम, क्लासिकल या शास्त्रीय संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद या उनका रूपांतर, द्वितीय, लोकप्रिय गीत जो दासों (घुमंतु गायक) द्वारा रचे गए। प्रमुख कवियों जैसे नरहप्पा और तीमन्न ने महाभारत का कन्नड़ अनुवाद प्रस्तुत किया, वहीं नरहरि जिन्होंने स्वयं को कुमार वाल्मिकी कहा ने रामायण का कन्नड़ अनुवाद किया। इसी प्रकार चातु विट्ठलनाथ ने 'भागवत' का अनुवाद किया। वैष्णव साहित्य की दूसरी श्रेणी में पुरंदरदास सर्वाधिक प्राचीन और प्रसिद्ध गायक थे। कनकदास उनके समकालीन थे और अपने प्रकार के एक महत्त्वपूर्ण दास गायक थे।

हालांकि प्रारंभिक और मध्यकालीन कन्नड़ साहित्य ने प्रचलित धार्मिक तत्त्वों को अधिक प्रस्तुत किया परंतु इस काल में कुछ अति उत्तम गैर-धार्मिक रचनाएँ भी लिखी गईं। कन्नड़ व्याकरण पर महत्त्वपूर्ण प्रबंध लेखन इस साहित्यिक क्षेत्र की एक उल्लेखनीय गतिविधि थी। नागवर्मा द्वितीय (12वीं शताब्दी ईस्वी) इस काल के सबसे महत्त्वपूर्ण व्याकरण लेखक थे। उनकी 'काव्यव्यालोकन' कन्नड़ व्याकरण और साहित्यशास्त्र

पर उल्लेखनीय कृति है। उनकी 'कनार्टक भाषा भूषण' कन्नड़ व्याकरण पर एक अन्य महत्त्वपूर्ण रचना है। उन्होंने 'वास्तुकोश' भी लिखा जो एक महत्त्वपूर्ण कन्नड़ शब्दकोश है। इसी श्रृंखला में केसीरजा (1260) की 'शब्दमणिदर्पण' एक उच्च स्तरीय कन्नड़ व्याकरण है। कन्नड़ व्याकरण पर लेखन इस काल में लगातार होता रहा। भट्टकलंकदेव की 'कर्नाटक शब्दानुशासन' (1604) कन्नड़ व्याकरण पर लिखी गई सबसे पूर्ण रचना है।

इसी प्रकार विज्ञान और विज्ञान संबंधित विषयों पर भी कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखी गईं। चावुंदार्य की 'लोकोपकार' (1025) दैनिक जीवन से संबंधित विभिन्न विषयों जैसे खगोल शास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, मूर्तिकला, पाक कला आदि पर लिखी गाइड है। श्रीधर आचार्य की 'जातक-तिलक' (1049) कन्नड़ में खगोल शास्त्र पर लिखी गई सर्वाधिक प्राचीन रचना है। कीर्तिवर्मा की 'गोवैद्यय' पशुचिकित्सा तथा चिकित्सा और जादू पर लिखी गई रचना हौ इसी प्रकार राजादित्य ने कई गणितीय रचनाओं जैसे व्यवहार-गणित, क्षेत्र-गणित, और लीलावती की गणितीय विषयों पर रचना की।

मध्यकालीन कन्नड़ साहित्य की एक अन्य विशिष्टता लघु कहानियों का लेखन था जिसका प्रारंभ 16वीं शताब्दी से हुआ। 'तेनाली रामकृष्णकथा' इस विधा की ज्वलंत उदाहरण है।

कन्नड़ साहित्य के विकास का अगला प्रमुख चरण 19वीं शताब्दी से आरंभ होता है। इससे पिछली शताब्दी में कन्नड़ के साहित्यिक स्तर में अवसान हुआ जो पूरी 18वीं शताब्दी तक जारी रहा। अंग्रेजी इस काल में कन्नड़ क्षेत्र की शिक्षण व्यवस्था में अपनी जड़ें जमा रही थी और इस प्रकार कन्नड़ कवियों और लेखकों को आधुनिक काव्य और गद्य रूप और पश्चिमी विज्ञान और संस्कृति से अवगत करा रही थी। इस प्रकार लेखन में आधुनिक गैर-धार्मिक समाज के जीवन और भावनाओं को प्राचीन कहानियों और महाकाव्यों तथा पुराणों के प्रकरणों की अपेक्षा अधिक महत्वत्ता दी जाने लगी। आरंभ के दो या तीन दशकों तक कन्नड़ लेखकों ने अंग्रेजी साहित्य का या अधिक प्रगतिशील भारतीय भाषाओं जैसे बंगाली के साहित्य का अनुवाद और रूपांतरण प्रस्तुत किया। पर बाद में उन्होंने अपने आस-पास की सामाजिक-आर्थिक और राजनीति संबंधी घटनाओं को अपने लेखन का विषय बनाया।

नये युग के कन्नड़ काव्य में विद्वान-कवि जैसे बी.एम. श्रीकांथय्या (1884-1946), डी.वीगुंडप्पा, के. वी. पुटप्पा आदि प्रमुख हैं। इन्होंने अनेक प्रकार की कविताएँ लिखीं जैसे लयात्मक, व्याख्यात्मक, गैर-धार्मिक, भक्ति संबंधी, नाट्य रूप और व्यंग्यात्मक कविताएँ।

नये प्रकार का साहित्य जैसे उपन्यास कन्नड़ में बंगाली के माध्यम से फैला। एम.एस. पुटन्ना (1854-1930), के.एस. कर्नाट, ए.एन. कृष्ण राव, टी.आर. सुब्बा राव आदि इस काल के कुछ प्रमुख उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों के विषय सामाजिक और दरबारी जीवन से लेकर निर्धनता और उपेक्षा और यहाँ तक कि बाह्य-वैवाहिक प्रेम संबंध रहे हैं।

लघु कथा और ड्रामा कन्नड़ गद्य के दो अन्य आधुनिक रूप हैं। मस्ती व्यंकटेश आयंगर एक प्रतिभाशाली कहानीकार के रूप में जाने जाते हैं। ड्रामा के क्षेत्र में चामाराजा वुडयार, बासवप्पा शास्त्री, टी.पी. कवलाश्म आदि कुछ विशिष्ट नाम हैं जिन्होंने कन्नड़ ड्रामा के विकास में योगदान दिया है।

(ii) तेलुगु

तेलुगु साहित्यिक अभिव्यक्ति के नियमित माध्यम के रूप में 10वीं शताब्दी से विकसित हुई। पूरे मध्यकाल में इस 'वर्नाक्यूलर' के साहित्यिक कार्यों में धार्मिक विषयों का वर्चस्व रहा। समकालीन वैष्णव और वीर-शैव आंदोलनों का इस काल के तेलुगु लेखन पर गहरा प्रभाव पड़ा। ये क्लासिकल या शास्त्रीय संस्कृत

ग्रंथ जैसे महाभारत, रामायण, भागवत आदि, इन संप्रदायों की प्रमुख धार्मिक विभुतियों की जीवनियों आदि का अनुवाद या रूपांतरण थे। इसके साथ-साथ व्याकरण, विज्ञान और गणित जैसे गैर-धार्मिक विषयों पर भी रचनाएँ लिखी गई। हालांकि इनकी संख्या काफी सीमित थी।

तेलुगु का आरंभिक धार्मिक साहित्य तीन कवियों के वर्चस्व का काल था जिन्हें 'कवित्राय' कहा जाता था। ये नान्या (11वीं शताब्दी), टिकन्ना (1220-1300) और येराप्रगाड़ (1280-1350) थे। इनकी 101 प्रसिद्धि का मुख्य कारण इनके द्वारा महाभारत का या इसके कुछ प्रकरणों का तेलुगु अनुवाद है। रामायण एक अन्य शास्त्रीय संस्कृत ग्रंथ था जिसका तेलुगु में अनुवाद किया गया। कोना बुद्धिराजा (13वीं शताब्दी ईस्वी) और हुलाकी भास्कर (14वीं शताब्दी) इन ग्रंथों के प्रारंभिक अनुवादक थे। पर रामायण का सबसे लोकप्रिय अनुवाद 16वीं शताब्दी में शुद्ध तेलुगु में एक निम्न जाति की कवियत्री मोल्ला द्वारा किया गया। इसके अतिरिक्त बाममेरा पोतान (1400-1475) द्वारा भागवत का अनुवाद और पिल्लालमारी पिना वीरभद्र द्वारा अनुवादित 'जैमिनी भारत' इस श्रेणी की कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

तेलुगु पर वीर-शैव संप्रदाय ने अपना प्रभाव डालना 12वीं शताब्दी ईस्वी से आरंभ किया। इस संप्रदाय के कवियों ने या तो इस संप्रदाय के मौलिक सिद्धांतों या इससे संबंधित विभुतियों की जीवनी लिखी। मल्लिकाअर्जुन पंडित की 'शिव-तत्त्व-सरम' इस संप्रदाय की एक महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार, पल्लुकारी सोमंथ (14वीं शताब्दी ईस्वी) ने कुछ उल्लेखनीय शैव ग्रंथ लिखे जैसे 'पंडितआराधयचरित' और 'द्विपद बासव पुराण'। श्रीनाथ (1365-1440) शैव संप्रदाय के महान कवियों में से संभवत: एक थे। उनकी प्रमुख कृतियाँ जैसे 'पंडित आराध्य चरित', 'शिवरात्री महात्मया', 'हरविलास', 'भीम खंड' और 'काशीखंड' उनके शैव संप्रदाय के प्रति तीव्र आस्था को स्पष्ट रूप से प्रकट करती हैं।

मध्यकालीन तेलुगु साहित्य अपने स्वर्णिम युग में विजयनगर राज्य के राजा कृष्णदेव राय (1509-1529) में शासनकाल में पहुँचा। उनके संरक्षण में और उनके आठ महान कवियों के समूह ने जिसे अष्टदिग्गज कहा जाता था और जो उनके दरबार की शोभा थे ने क्लासिक संस्कृत ग्रंथों का तेलुगु में अनुवाद करने की परंपरा की शुरुआत की। इसने धीरे-धीरे पौराणिक विषयों को आधार बनाकर मौलिक रचनाओं की परंपरा को स्थान दिया। अन्य शब्दों में धीरे-धीरे इसमें मौलिक रचनाएँ की जाने लगी। कृष्णदेव राय की 'अमुक्तमाल्यदा' या 'विष्णुचित्तिया' जो दक्षिण भारत के एक प्रमुख वैष्णव संत (अलवर, Alwar) विष्णुचित्त के जीवन से संबंधित थी, तेलुगु में पाँच महान 'काव्यों' में से एक मानी जाती है। अलासी पेदन्ना जो 'आंध्रकविपितामह' के नाम से जाने जाते हैं ने 'मनुचरित' या 'स्वरोचिश-संभव' की रचना की। कृष्ण देव राय के दरबार के एक अन्य महान कवि नंदी तिमन्न थे जिन्होंने 'परिजातपाहारण' की रचना की। यह श्री कृष्ण के जीवन के एक प्रकरण से संबंधित है। भट्टमूर्ति की 'वासुचरित', धुरजति की 'कलाहस्ती महात्मया', 'माद्यागरी माल्लना की 'राजशेखर चरित' आदि इस काल की कुछ विशिष्ट तेलुगु कृतियाँ हैं। परंतु इन अष्टदिग्गजों में सबसे रोचक तेनाली रामकृष्ण थे। तेनाली रामकृष्ण आज भी एक दरबारी विदुषक के रूप में अपने हास्य और व्यंग्य के लिए याद किए जाते हैं। पर वे एक प्रतिभावान कवि भी थे और उनकी 'पांडुरंग महात्मया' और 'उद्भतचार्यचरित' समकालीन तेलुगु लेखन का उत्तम नमूना प्रस्तुत करती है।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, हालांकि इस काल में अधिकतर रचनाएँ धार्मिक विषयों से ओत-प्रोत थीं, परंतु गैर-धार्मिक विषयों जैसे व्याकरण, विज्ञान, गणित आदि को भी पूर्ण रूप से उपेक्षित नहीं किया गया। नान्या ने 'आंध्र-शब्द-चिंतामणि' की रचना की जो प्रथम तेलुगु व्याकरण मानी जाती है। इस कृति

के कारण उन्हें 'वंगानुशासन' की उपाधि भी दी गई। वेमुलवाड भीमकवि ने 'कविज्ञानाश्राय' लिखा जो तेलुगु व्याकरण से संबद्ध है। इसी प्रकार, केतन की 'आंध्र-भाषा-भूषण' व्याकरण पर एक अन्य महत्त्वपूर्ण कृति है। उनकी 'दशकुमारचरित' दांडिन की रचना का अनुवाद है जिसके लिए उन्हें 'अभिनव दांडिन' की उपाधि दी गई। उन्होंने तेलुगु में विज्ञानेश्वर की 'मीताक्षर' को भी रूपांतरित किया। बद्देना ने 'नीतिशास्त्र-मुक्तावली' की रचना की जो राजनीति पर लिखा गया प्रबंध है। पेद्दन्ना ने भास्कर की 'लीलावती' का 'प्रकीर्ण गणित' के नाम से अनुवाद किया। श्रीनाथ की 'शृंगार-नैषध' श्री हर्ष की 'नैषधकाव्य' का अनूदित रूप है।

विजयनगर के पतन के उपरांत तेलुगु साहित्य का स्तर गिरने लगा। केवल कुछ लोक नाटकों को छोड़कर जिनकी रचना नायकों की राजधानियों में की गई, तेलुगु साहित्य में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई।

तेलुगु साहित्य में आधुनिक चरण 19वीं शताब्दी से आरंभ हुआ। कांदुकुरी वीरसालिंगम, (1848-1919) जो एक प्रसिद्ध धर्म और समाज सुधारक थे, आधुनिक तेलुगु साहित्य की पहली प्रमुख विभुति थे। उन्होंने तेलुगु में पहला उपन्यास और नाटक लिखा। उन्होंने तेलुगु कवियों के जीवन पर शोध-प्रबंध भी लिखे। इसके अतिरिक्त उन्होंने आत्मकथा और लोकप्रिय विज्ञान पर पहली पुस्तक भी लिखी। चिन्नया सूरी (1808-62) उनके समकालीनों में से एक थे। उन्होंने संपूर्ण व्याकरण के निमार्ण में बहुमूल्य योगदान दिया तथा साथ ही वर्तमान रूप के तेलुगु गद्य की स्थापना की। गुरजड़ अप्पा राव, जो वीरसालिंगम के कनिष्ठ समकालीन लेखक थे, ने लघुकहानियों का पहला संग्रह प्रस्तुत किया। उन्होंने एक नाटक 'कान्याशुल्कम' की भी रचना की जो मौखिक और लिखित तेलुगु रूपों को जोड़ने का समर्थन करती थी। इसके अतिरिक्त लोकगीतों से प्रेरित होकर उन्होंने एक नये काव्य मापक का प्रयोग आरंभ किया जिसे 'मुत्यालासरण' कहा गया। एक अन्य उल्लेखनीय लेखक सी.आर.रेड्डी थे जिन्होंने आधुनिक साहित्यिक आलोचना में पहला दीर्घ निबंध लिखा। वे तेलुगु में अर्थव्यवस्था पर भी लिखने वाले पहले लेखक थे। उनके समकालीन लेखक लक्ष्मण राव ने आंध्र में ऐतिहासिक शोध की शुरुआत की। जब एक बार इस प्रकार के रुझान की शुरुआत हुई उसके उपरांत नये युग का काव्य, उपन्यास, नाटक, निबंध, लघु कथा, ऐतिहासिक शोध, साहित्यिक आलोचना आदि इस वर्नाक्यूलर की विशिष्ट शाखाओं के रूप में विकसित हुई। तेलुगु साहित्य की शुरुआत संस्कृत के प्रभाव में फिर अंग्रेजी और बंगाली के प्रभाव में हुई, पर आज इसने स्वयं की एक स्वतंत्र पहचान स्थापित कर ली है और संसार की प्रमुख साहित्यिक विचारधाराओं के संपर्क में है। इस प्रकार तेलुगु साहित्य ने एक विस्तृत दृष्टिकोण समाहित कर लिया है।

(iii) मलयालम

ऐसा माना जाता है कि मलयालम का उत्थान प्राचीन तमिल के एक रूप 'कोदुम-तमिल' से हुआ है जो संगम काल में आज के केरल राज्य में प्रचलित थी।

प्राचीनतम मलयालम लेखन का एक रूप 'पालाइयापत्तु' या पुराने गीतों के रूप में विकसित हुआ। ये लोकप्रिय गाथाएँ थीं जो विवाह समारोहों में, देवी-देवताओं की स्तुति में या किसी विशेष उत्सव के अवसर पर गायी जाती थीं।

'ब्रहमतिप-पत्तु', उदाहरण के लिए, ऐसी ही गीतों की रचना है जो विवाह के अवसरों पर गायी जाती थीं। परंतु मलयालम में सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध साहित्यिक रचना 'उन्नुनिली संदेशम' है। यह 14वीं शताब्दी की अज्ञात कविता है। 'चंद्रोत्सव' और 'लीलातिलकम' इस काल की अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं।

इसी अंतराल में लगभग 13वीं शताब्दी से साहित्यिक रचनाओं के नृत्य रूप में प्रदर्शन के रूप में 'चक्कयार-कुट्टु' के विकास ने मलयालम साहित्य को तीव्र प्रोत्साहन दिया। इसे स्पष्ट रूप में चंपु शैली (गद्य और पद्य की मिश्रित रचनाएँ) ने अधिवृद्ध किया जो पौराणिक कथाओं और प्रकरणों पर आधारित थी। इनकी रचनाएँ मुख्य रूप से नम्बूदरी ब्राह्मणों द्वारा की गई। यह ऐसा वर्ग था जो अपनी वाकपुट्ता, व्यंग्य, और साहित्यिक कुशलता के लिए जाना जाता था। 'रामायण चंपु' जो संभवत: अत्यधिक प्रसिद्ध पुनम नंबूदरी (15वीं शताब्दी ईस्वी) द्वारा लिखी गई, और मालमंगलम नंबूदरी (16वीं शताब्दी ईस्वी) द्वारा रचित 'नेषध-चंपु' आदि इस विधा में मलयालम में लिखी गई उत्तम कृतियाँ हैं।

चंपु और चक्कयार-कुट्टु के साथ-साथ अन्य प्रकार की काव्य रचनाएँ भी की जाती रहीं। इनमें विषयों की विविधता देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए 'रामचैतम' ऐसी रचना है जो 10वीं और 13वीं शताब्दी ईस्वी के बीच त्रावणकोर के प्राचीन राजा द्वारा लिखी गई। इसी प्रकार 'भाषाकौटिल्य' अज्ञात लेखक द्वारा कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर मलयालम में लिखी गई टीका है। इस प्रकार की कई अन्य रचनाएँ भी लिखी गईं।

मध्यकालीन मलयालम साहित्य में नीरनाम कवियों का अहम योगदान रहा। इन्हें नीरनाम इनके गाँव के नाम पर कहा जाता था। इन कवियों ने मलयालम में एक स्वतंत्र शैली विकसित करने का प्रयास किया जो संस्कृत और तमिल के प्रभाव से मुक्त हो। इन्होंने एक ऐसे काव्य मापक को भी लोकप्रिय बनाया जो इसके नाम पर आधारित था। इसे 'नीरानवृत्तम' कहा गया। राम पानिकर जिन्होंने 'रामायणम्', 'भारत गाथा', 'सावित्री महात्मयम', 'भागवतम्' आदि की रचनाएँ की वे नीरनाम कवियों में संभवत: सर्वाधिक प्रमुख थे। उनके इस भाषा में प्रचुर साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें मलयालम का चॉसर कहा गया है। अट्टकथा या कथकली, जो नृत्य-नाटिका का एक रूप था, मध्यकालीन मलयालम साहित्य का एक अन्य लोकप्रिय रूप था। कोट्टरक्का तामपुरण की 'रमन-अट्टम' उपलब्ध अट्टकथाओं में पहली ऐसी रचनाओं में मानी जाती है। इसके उपरांत भी कई अट्टकथाएँ लिखी गईं। अब तक लगभग 200 कथाओं की सूची उपलब्ध है। रवि वर्मन थंपी (1783-1863) उत्कृष्ट कथकली के संभवत: सबसे विशिष्ट लेखक थे। इस प्रकार के साहित्य ने शाही दरबार और सामंतों का निर्विघ्न संरक्षण प्राप्त किया।

मलयालम साहित्य का आधुनिक काल 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से शुरु हुआ। इसके प्रमुख कारकों में 19वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में केरला में नई शिक्षा पद्धति की शुरुआत, इसाई मिशनरियों की गतिविधियाँ, 1857 में मद्रास विश्वविद्यालय की स्थापना जिसकी गतिविधियों का प्रसार केरल में भी हुआ आदि उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक मलयालम साहित्यिक विभुतियों में केरला वर्मा सबसे पहले और महत्त्वपूर्ण लोगों में से एक थे। वे एक प्रसिद्ध संस्कृत और मलयालम कवि और विद्वान थे। उन्होंने 'मयूरा संदेशम' लिखी तथा कालिदास की शकुंतला का मलयालम में अनुवाद प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त त्रावणकोर की सरकार ने अपने नियोजित कार्यक्रम के अंतर्गत मलयालम भाषा के विकास के लिए सभी कक्षाओं की पुस्तकों के प्रकाशन का उत्तरदायित्व भी करेला वर्मा को सौंपा। इसके साथ ही अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि आधुनिक मलयालम साहित्य के विकास में ग्रंगानोर स्कूल के कवियों का भी योगदान रहा। वरमानी और उनके पुत्र के नेतृत्व में इस स्कूल ने संस्कृत के वर्चस्व को तोड़ा और साहित्य को साधारण लोगों तक पहुँचाया। इसके अतिरिक्त ए०आर० राजाजा वर्मा एक अन्य साहित्यकार थे जिन्होंने मलयालम साहित्य को संस्कृत परंपरा से मुक्त करने

का प्रयास किया। वालाथोल नारायण मेनन और कुमारन असन की लेखनी ने इस आंदोलन को और अधिक तीव्र बनाया।

मलयालम में आधुनिक गद्य साहित्य का उत्थान 'टेक्स्ट बुक कमेटी' (Text Book Committee) (केरला वर्मा की अध्यक्षता में) और नई शिक्षा नीतियों का परिणाम है। इस काल में उपन्यास और लघु कथाएँ भी प्रकाश में आने लगीं। ये अधिकतर अंग्रेजी की अनुदित या रूपांतरित रचनाएँ थीं। पर शीघ्र ही मलयालम में इस विधा में मौलिक रचनाओं ने केंद्रीय स्थान प्राप्त किया। 'इंदुलेखा' की रचना मलयालम उपन्यासों की मौलिकता और परिपक्वता को प्रकट करती है। अप्पन तामपुरण, के.एम. पानिकर और केके. मेनन आदि मलयालम के कुछ जाने माने उपन्यासकार हैं। लघुकथाओं के क्षेत्र में लेखकों जैसे थाकाज़ी, के. जी. मोहम्मद, डी.एम. पोटटेकाड आदि की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

मलयालम भाषा में शब्दकोशों और व्याकरण की रचना 1840 से की जाने लगी। बेंजामिन बैली जो एक प्रोटेस्टेंट मिशनरी थे ने 1846 में मलयालम-अंग्रेजी शब्दकोश का प्रकाशन किया। हर्मन गुंदर्ट, जो एक जमर्न विद्वान थे, ने 1872 में एक सशक्त शब्दकाशे ा की रचना की। यह द्रविड़ भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है। हालांकि प्राथमिक व्याकरण कुछ इसाई मिशनरियों द्वारा प्रकाशित की गई, पर ए. आर. राजा वर्मा ने 'केरला पाणिनियम' की रचना की जिसने न केवल मलयालम को एक सशक्त व्याकरण दिया बल्कि मलयालम की मापक शैली को स्तरीय बनाने में भी सहायता दी।

ड्रामा का विकास आधुनिक मलयालम साहित्य का एक अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। इसकी शुरुआत केरला वर्मा के अभिज्ञान-शकुंतलम के अनुवाद से हुई। हाल के वर्षों में मलयालम में कई मौलिक नाटक लिखे गये हैं जो सजीव सामाजिक घटनाओं और प्रगतिवादी बौद्धिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि का मिश्रित रूप हैं।

अभ्यास-7

(अ) निम्नलिखित के लिए 'सही' या 'गलत' बताईये:

(i) कविराजमार्ग के रचयिता नृपतुंग हैं।

(ii) कन्नड़ साहित्य के तीन रत्न पंपा, पोन्ना और रन्ना हैं।

(iii) कृष्णदेव राय ने अमुक्त माल्यदा की रचना की।

(iv) चक्कयार- कुट्टु तमिल नाडु का साहित्यिक रचना का नृत्य रूप के प्रदर्शन है।

(v) केरला वर्मा ने अभिज्ञान शकुंतलम् का मलयालम में अनुवाद किया

(vi) माइकल मधुसुदन दास ने मेघनादवध लिखा।

(ब) 1. काव्य रूप 'चरित पुठी' निम्नलिखित में से किस साहित्य से संबंधित है?

(अ) गुजराती (स) मलयालम

(ब) बंगाली (स) आसामी

2. इसमें से किसने प्रथम बंगाली समाचार पत्र 'समाचार दर्पण' का प्रकाशन किया?

(अ) ईश्वर चंद विद्यासागर (स) श्रीरामपुर का इसाई मिशन

(ब) राजा राम मोहन रॉय (च) देवेंद्र नाथ टैगोर

3. 'फगु' जो विरह से संबंधित कविता है निम्नलिखित में से किस साहित्य से संबंधित है?

(अ) बंगाली (स) गुजराती

(ब) उड़िया (च) आसामी

4. सत्यवादी समूह के लेखकों ने निम्नलिखित में से किस साहित्य का प्रोत्साहन किया?
   (अ) उड़िया (स) मुल्तानी
   (ब) गुजराती (च) पंजाबी
5. इनमें से किसने 'भावर्त-दीपिका' की रचना की?
   (अ) ज्ञानदेव (स) तुकाराम
   (ब) एकनाथ (च) रामदास समर्थ
6. इनमें से किसने पद्मावत की रचना की?
   (अ) मलिक मोहममद जायसी (स) मंझन
   (ब) कुतुबान (च) उथमान
7. 'वाख' जो चार पंक्तियों की कविता है निम्नलिखित में से किस भक्ति संत से संबंधित है?
   (अ) कबीर (स) लाल देद
   (ब) मीराबाई (च) राबिया
8. पंपा, पोन्ना और रन्ना जिन्हें तीन रत्न के रूप में जाना जाता है, किस साहित्य से संबंधित थे?
   (अ) तेलुगु (स) कन्नड़
   (ब) तमिल (च) मलयालम
9. कवित्राय-नान्या, टिकन्ना और येराप्रगाड़ किस साहित्य से संबंधित थे?
   (अ) तेलुगु (स) कन्नड़
   (ब) तमिल (च) मलयालम
10. अट्टकथा या कथकली, जो नृत्य-नाटिका का एक रूप था, ने किस साहित्य को अधिवृद्ध किया?
   (अ) सिंधी (स) कश्मीरी
   (ब) मुल्तानी (च) मलयालम

(स) लघु प्रश्न:

1. कन्नड़ वर्नाक्यूलर साहित्य के विकास की व्याख्या कीजिए
2. मध्यकाल के मलयालम वर्नाक्यूलर साहित्य का वर्णन कीजिए

(ड) दीर्घ प्रश्न:

1. उत्तर भारत की वर्नाक्यूलर भाषाओं के उत्थान एवं विकास की प्रक्रिया पर संक्षेप में टिप्पणी करो।
2. दक्षिण भारतीय वर्नाक्यूलर भाषाओं के उत्थान की व्याख्या कीजिए।
3. मध्यकालीन भक्ति आंदोलन किस प्रकार गुजराती और उड़िया वर्नाक्यूलर साहित्य में प्रस्तुत हुआ है?

2.5.5 उपसंहार

यह स्पष्ट है कि भारतीय सभ्यता के विकास में अनेक संस्कृतियों के मिश्रण की निर्विघ्न प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण तत्त्वों में से एक है। इस प्रक्रिया के परिणामों में से एक परिणाम उत्तर और दक्षिण भारत में संस्कृत

और तमिल का भारत की क्लासिकल भाषाओं के रूप में विकास था। संस्कृत से अंततः कई सरल और लोकप्रिय भाषा रूपों जैसे प्राकृत, अपभ्रंशः और इंडो-आर्य भाषाओं का विकास हुआ। इसी प्रकार से तमिल ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दक्षिण भारतीय भाषाओं जैसे कन्नड़, तेलुगु और मलयालम के उत्थान और विकास में सहायता प्रदान की। तदुपरांत इन सभी भारतीय वर्नाक्यूलर भाषाओं में मौलिक रचनाएँ की जाने लगीं। इस 'वर्नाक्यलूर' के प्रवर्धन में कई कारकों का योगदान रहा। जैसे विभिन्न क्षेत्रों और स्थानों में भक्ति आंदोलन का प्रसार, यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों का आविर्भाव, छापेखाने की स्थापना और पत्रिका, समाचार-पत्र आदि का प्रकाशन, भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में इसाई मिशनरियों की गतिविधियाँ, भारत में अंगेज़ी, शिक्षा का उत्थान, बुद्धिजीवी वर्ग का उदय, और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के अंतगर्त सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन आदि। आज भी यह प्रक्रिया लगातार जारी है। भारत में अनेक 'वर्नाक्यूलर' का प्रचलन इसे एक विशिष्ट बहुभाषी देश की छवि प्रदान करता है जो इसकी सांस्कृतिक बहुलता का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

2.5.6 समापन

- विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों का समागम भारतीय सभ्यता की एक विशिष्टता रही है।
- संस्कृत और तमिल क्रमशः उत्तर और दक्षिण भारत में विकसत हुई क्लासिकल भाषाएँ थीं।
- संस्कृत से कालांतर में लोकप्रिय भाषा रूपों जैसे प्राकृत, अपभ्रंशा और अंततः इंडो-आर्य भाषाओं का विकास हुआ।
- इसी प्रकार से तमिल ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अन्य दक्षिण भारतीय भाषाओं जैसे कन्नड़, तेलुगु और मलयालम के विकास में सहायता की।
- कालांतर में इन सभी वर्नाक्यूलर भाषाओं ने अपनी साहित्यिक रचनाएँ भी प्रस्तुत कीं।
- भारत में अनेक भाषाओं की उपस्थिति इसे बहुभाषी तत्त्व प्रदान करती है जो भारतीय सांस्कृतिक विविधता का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

संदर्भ सूची

1. ए.एल. बाशम, 'द वंडर दैट वाज़ इंडिया', 39वां संस्करण, रूपा एंड को., दिल्ली, 2002
2. डॉ० नागेंद्र (संपादित), 'हिंदी साहित्य का सामकित विकास', हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, विश्वविद्यालय, 1989
3. के.ए. नीलकांत शास्त्री, 'ए हिस्ट्री ऑफ साऊथ इंडिया', फ्रॉम प्रीहिस्टॉरिक टाइम्स टू द फॉल ऑफ विजय नगर, ओ.यू.पी., 1990
4. पी.एन. चोपड़ा, 'द गज़ेटीयर ऑफ इंडिया', हिस्ट्री एंड कल्चर, खंड प्रथम, भारत प्रकाशन विभाग, 1988

उत्तर

अभ्यास- 1

(अ) (i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) सही (v) सही

(ब) (iv) (स) (iii)

(ड) उप-भाग 2.1.2 देखें (2) उप-भाग 2.1.2 देखें।

अभ्यास-2

(अ) (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही

(ब) (iii) (स) (iii) (ड) 1. उप-भाग 2.2.2 देखें।

(च) 1 उप-भाग 2.2.2 देखें।

अभ्यास-3

(अ) (i) च (ii) 3 (iii) अ (iv) ब (v) स

(ब) (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) सही

(स) 1. उप-भाग 2.3.3 देखें

2. उप-भाग 2.3.3 देखें

(ड) 1. उप-भाग 2.3.2 देखें

2. उप-भाग 2.3.3 देखें

3. उप-भाग 2.3.5 देखें

अभ्यास-4

(अ) (i) सही (ii) सही (iii) सहीं (iv) सही (v) सही

(ब) (iv) (स) (iii) (ड) 1. उप-भाग 2.4.7 देखें 2. उप-भाग 2.4.8 देखें

(च) 1. उप-भाग 2.4.2 देखें

2. उप-भाग 2.4.7 देखें

3. उप-भाग 2.4.10 देखें

अभ्यास-5

(अ) (i) सही (ii) सही (iii) सही (iv) गलत (v) सही

(ब) (iii) (स) (ii)

अभ्यास-6

(अ) (i) सही (ii) सही (iii) सही (iv) सही (v) गलत

(ब) (i) ब (ii) स (iii) अ (iv) ब (v) स

अभ्यास-7

(अ) (i) सही (ii) सही (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) सही

(ब) (i) ड (ii) स (iii) स (iv) अ (v) अ (vi) अ (vii) स (viii) स (ix) अ (x) ड

(स) 1. उप-भाग 2.5.4 देखें

2. उप-भाग 2.5.4 देखें

(ड) 1. उप-भाग 2.5.4 देखें

2. उप-भाग 2.5.4 देखें

3. उप-भाग 2.5.4 देखें